जीवन पाथेय

साध्वी-युगल निधि-कृपा



परमात्मा की देशना के
रंग-बिरंगे उपवन से चुने.....
कुछ फूलों का मनोरम गुलदस्ता

[illegible]

आशीर्वाद

पू. महासती श्री केसर देवीजी
पू. महासती श्री कौशल्या देवीजी

समर्पण

पू. महासती विमला श्री जी
पू. महासती उर्मिला श्री जी

प्रस्तुति

साध्वी युगल निधि-कृपा

प्रस्तावना

डा राजमल बोरा

ISBN

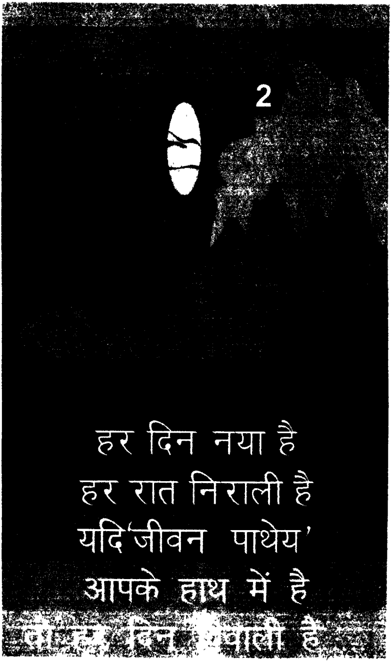
81-900823-3-7

संस्करण : वर्ष : प्रतियाँ

प्रथम : 1999 : 3000

कॉपीराइट

मूल्य 50/-


2
हर दिन नया है
हर रात निराली है
यदि 'जीवन पाथेय'
आपके हाथ में है
तो हर दिन दिवाली है

प्राप्ति-स्थान

MAITRI CHARITABLE FOUNDATION

NO. 2. MURUGAPPAN STREET, SOWCARPET,
CHENNAI- 600079
TEL: 5227395, 5325787, 5321764

Mr. DEEPAK DESAI JAIN
F-102, Ashok Vihar
Phase I, Delhi- 110052
Tel: 7444811, 7413088

Mr. RAJESH SHINGHVI JAIN
No. 62, Bhawani Peth
Pune- 411042
Tel: 655570, 653477

Mr. NARENDER JAIN
886,L Block, Kedar Bldg.,
Sabzi Mandi, Ghantaghar
Delhi- 110007
Tel: 3959182, 2932906.

Mr. VEERENDRA SURANA JAIN
Aadinath Exports,
34, Ganesh Bhavan
80, Ramwadi, Kalbadevi,
Mumbai Tel.:

Mr. MANMAL DARLA JAIN
Darla Sales & Agencies
1516-A, Shivaram Pet,
Mysore-1
Tel.: 31473, 24170

Mr. JAYESH MEHTA JAIN
Foto Circle
No.2, S.S.K. Sangha Bldg.
Ballepet, Bangalore- 560010
Tel: 3306829,3384074.

Mr. L.D. MEHTA JAIN
Sector 3-B, Plot No. 395/2
Gandhinagar- 382006
Tel.: 29576

Mr. KUNDAN KANKARIYA JAIN
Jeevan Dhara
Burudgaon Road
Ahmednagar (M.S)
Tel: 25359, 25483

हमारी पुस्तकें

- जीवन बोध
- Solutions to Your Sunsign
- Bhaktamar Stotra
- आपकी राशी आपका समाधान
- जीवन पाथेय प्रथम भाग
- जीवन पाथेय द्वितीय भाग

लघु पुस्तकें

- गुरु प्रसादी
- दस लक्षण
- धर्म संदेश
- ध्यान साधना
- दैनिक चिंतन

संपर्क सूत्र

MAITRI CHARITABLE FOUNDATION
NO. 2. MURUGAPPAN STREET, SOWCARPET,
CHENNAI-600079
TEL: 5227395, 5325787, 5321764

समर्पण

जिनके दर्शन से

हमारा साधना–पथ प्रशस्त हुआ....

जिनकी सद्भावी एवं प्रभावी

पीयूषवर्षिणी कृपा

अप्रतिहत प्रेरणा

एवं सक्रिय सहयोग ने

हमें सदैव प्रोत्साहित किया....

जो हमारे विगत–आगत–अनागत के

पूँजीभूत पुण्यों का प्रमाण है ऐसी

परमविदुषी महामना महासाध्वीद्वय

पू. विमला श्री जी म.

एवं

पू. उर्मिला श्री जी म.

के पुनीत कर–कमलों में

सविनय समर्पित........

शुभाशीष

संसार का प्रत्येक व्यक्ति यात्रा करते हुए मार्ग में भोजन आदि (जिसे 'पाथेय' कहते हैं) लेकर चलने का प्रयास करता है तो उसे सुख का अनुभव होता है यह अनुभवित विषय है। इसी प्रकार यह जीवन भी एक यात्रा है, जहाँ पहुँचना है वह मंजिल दूर है अतः मार्ग में पाथेय का होना अनिवार्य है। वह पाथेय है सुन्दर, श्रेष्ठ और उत्तम विचार।

चिन्तनशील मस्तिष्क में यह प्रश्न हो सकता है कि यह पाथेय कहाँ से और कैसे उपलब्ध होगा। महापुरुषों का कथन है- यह पाथेय हमें सत्संग से प्राप्त हो सकता है। आप्तवाणी का श्रवण और पठन ये दो आयाम ऐसे हैं जिसके माध्यम से मनुष्य का जीवन-पथ सुगम बन जाता है। जनकल्याण हित अनेक सुज्ञों ने इस दिशा में प्रयास किये हैं। अध्ययन-चिंतन और लेखन की त्रिवेणी में निरंतर गतिशील रहते हुए साध्वी युगल निधिश्री एवं कृपा श्री ने 'जीवन पाथेय' के रुप में प्रवचन संग्रह दो खडों में प्रस्तुत किया है जिसमें प्रत्येक जीवन यात्री के लिए एक संदेश है जो आलोक की और गति करवाता है, जो आनद में रहने की प्रेरणा देता है और अमृत को पाने की प्यास जगाता है।

प्रवचन जीवन परिवर्तन का प्रबल साधन है। वैसे तो प्रतिदिन प्रवचन होता है, श्रोता सुनते हैं और आकाश में बिखर जाता है। यदि इसे संकलित व समायोजित करने का प्रयास ना हो तो अन्य लोगों के लाभान्वित होने की बात

तो दूर, साक्षात् श्रोता भी उसे भूल जाते हैं। इस दृष्टि से प्रवचन-संकलन का कार्य स्थायित्व और उपयोगिता दोनों दृष्टियों से मूल्यवान है।

प्रस्तुत प्रवचनों में दिशा और दृष्टिकोण के बदलाव पर अत्याधिक जोर दिया है। वस्तुतः दृष्टिकोण को बदलना ही सम्यग्दर्शन है। यही ज्ञान और आचरण की सत्यता का आधार है। साध्वी युगल इसी तरह श्रुतसाधना एवं रत्नत्रय की निरामय आराधना द्वारा निर्विघ्न रुप से वीतराग पथ पर बढ़ती हुई अपने लक्ष्य को प्राप्त करें यही हमारा हार्दिक शुभाशीष है।

प्रवचनों के इस संग्रह से सारे लोग लाभान्वित होंगे ऐसा हमें विश्वास है क्योंकि स्वाध्याय करने वाले को सत्य मिलता है, खोजनेवाले को रत्न मिलता है और मनन करनेवाले को ज्ञान मिलता है। इसी प्रकार जो निष्ठा के साथ 'जीवन-पाथेय' के सूत्रों को आत्मसात् करेंगे उन्हें अवश्य मंजिल मिलेगी।

आत्म-चिंतन एवं मनन के उद्देश्य से प्रकाशित इस पुस्तक से जन-जन में धर्म के पावन सस्कार प्रस्थापित हो इन्हीं मंगल-भावनाओं के साथ......

साध्वी विमला श्री

एवं

साध्वी उर्मिला श्री

जैन स्थानक, डेरावाल नगर

दिल्ली

प्रकाशकीय

भौतिकता की चकाचौंध एवं कामनाओं की तीक्ष्ण ज्वाला में झुलसते हुए सभी संसारी मानव तनाव और आकुलता से संतप्त है। वे सुख की खोज में तो हैं किन्तु सुख प्राप्ति का सतत पुरुषार्थ करते हुए भी उन्हें दुःख का ही निरंतर वेदन करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में सभी आत्माओं को सुख एवं शांति के जीवन-पथ का सही परिज्ञान हो इसी हेतु से मैत्री चैरिटेबल फाउन्डेशन (MCF) विदुषी साध्वी युगल निधि श्री जी एवं कृपा श्री जी द्वारा लिखित 'जीवन-पाथेय' पुस्तक दो भागों में प्रकाशित करने जा रहा है।

MCF का आरंभ से ही एक उद्देश्य यह भी रहा है कि जो साहित्य चरित्र निर्माण करता हो तथा मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठापित करता हो ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन किया जाये। हमें हर्ष है कि अपने ही उद्देश्यों की श्रृंखला में एक नई कडी जुड़ रही है। इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि साध्वी युगल ने सरल और सहज शब्दों में अपनी बात पाठकों तक पहुँचाई है। आपके विचारों में एवं भाषा-शैली में कहीं क्लिष्टता और जटिलता नहीं है। पाठक सहज प्रवाह में पढता हुआ बहता चला जाता है।

अद्‌भुत है इनका व्यक्तित्व, अपूर्व है इनका कृतित्व तथा अनूठी है इनकी आधुनिक किंतु आध्यात्मिकता से ओतप्रोत प्रवचन-धारा। नपे-तुले शब्दों में अपने भावों को गहराई से अभिव्यक्त करने का कला-कौशल आप में है। अपने कथ्य की पुष्टि के लिए दिये गये छोटे-छोटे उदाहरण प्रवचन के

भावों को स्पष्ट, प्रभावी और अत्यधिक हृदयस्पर्शी बना देते हैं। श्रोता के हृदय पर इसका इतना प्रभाव पड़ता है कि वह अंदर ही अंदर अपने को उस परिधि से, उस प्रभाव से बंधा-बंधा महसूस करता है- यह मेरा अपना निजी अनुभव है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक हमारी भावी पीढ़ी के लिये एक जान, शान एवं मान का कार्य करेगी। पूज्या साध्वी युगल से हमारी यही अपेक्षा है कि वे इसी प्रकार 'सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय' रुप जनोपयोगी साहित्य द्वारा मानव समाज का ज्ञान-पथ आलोकित करती रहें।

यह पुस्तक आपके समस्याग्रस्त जीवन और मुरझाए मन को प्रसन्नता की नई रोशनी पैदा करेगी ऐसी शुभकामना के साथ........

गौतमचंद जैन कांकरिया
एवं ट्रस्टीगण MCF
चेन्नई

प्रस्तावना

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसे समाज में रहना है और दूसरे व्यक्तियों के साथ संपर्क बनाये रखना है। इस संपर्क में व्यक्ति, व्यक्ति से तथा व्यक्ति समाज से जिन सूत्रों के आधार पर जुड़ता है, उन सूत्रों में नैतिकता विद्यमान रहती है। हमारा पारिवारिक तथा सामाजिक व्यवहार हमारी अपनी नीति को उजागर करता है। इसी नीति का मूल्यांकन परिवारों में और समाज में होता रहता है। इस मूल्यांकन से सभी प्रभावित होते है। इसी के आधार पर आत्मबल की परीक्षा होती है। हर कोई अपने-अपने आत्मबल को बढ़ाना चाहेगा। इस आत्मबल को परखने में उसके स्वरुप को समझने में प्रस्तुत पुस्तक 'जीवन पाथेय' बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

विदुषी साध्वी युगल निधिश्री जी एवं कृपाश्री जी द्वारा लिखित नीति-कथनों से युक्त और दृष्टांतो से पुष्ट पचास प्रवचनों का मैंने समग्र रुप से अवलोकन किया है। पुस्तक का प्रयोजन मानसिक संस्कारों का मार्जन करना है। भाषा सहज, सरल और बोध-गम्य है। उद्बोधन की शैली इतनी प्रभावक है कि प्रवचन पढ़कर प्रत्येक पाठक का मन सद्विचारों की ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकेगा।

प्रत्येक प्रवचन एक नई प्रेरणा, नई स्फूर्ति एवं नई चेतना का प्रतीक है। स्वस्थ तथा सुखी जीवन जीने के नये-नये आयाम इसमे है। संघर्षो की ऑधी-तूफानों में मुस्कान के साथ कैसे जिएँ इसकी एक झलक है। निराशा को आशा मे उजागर करने की तथा विधेयात्मक दृष्टि को बनाने की प्रेरणा इसमें

है। प्रवचनों का क्रम एवं उनके शीर्षक इतने आकर्षक है कि जो पाठकों को पढ़ने के लिए बाध्य करते है।

'प्रवचन' में मूल बात तो नीति कथन है। तदर्थ प्रवचन का आरंभ और अंत संदर्भ कथनों से घिरा रहता है। बीच-बीच में संदर्भों को प्रेषणीय बनाने के लिए और उसे रोचकता प्रदान करने हेतु व्यवहारिक दृष्टांत एवं कुछ मार्मिक कथाएँ भी दी गई है। प्रवचन बहुत लंबे नहीं है, कथा मात्र सूत्रों को उजागर करने के लिए ही लिखी है। पुस्तक की रोचकता अंत तक बनी रहती है। चाहे काई भी एक प्रवचन पढ़ो, शिक्षाप्रद प्रेरणा मन पर अवश्य प्रभाव डालती है।

प्रवचन प्रेषणीय है। अनुभूत कथन है। इसका स्वरुप नैतिक सूत्रों को पकड़ने और उन्हें दृढ़ करने के लिए है। साध्वी युगल के चिंतन और परिश्रम का मैं हार्दिक अभिनंदन करता हूँ। परमात्मा महावीर की वाणी को सुनने की, उसे पढ़ने की और समझने की जिज्ञासा मुमुक्षु आत्मा को होती ही है और जो भी उस प्यास को तृप्ति प्रदान करता है वह निश्चित ही अभिनदनीय और वंदनीय है।

साध्वी द्वय अपनी वाणी और लेखनी दोनों से ही साहित्य साधना की उँचाइयो को प्राप्त कर एक अनुपम आदर्श प्रस्तुत करेंगी ऐसा मुझे विश्वास है। पाठकगण इस पुस्तक का स्वाध्याय कर अपनी मजिल को प्राप्त करें यही इन प्रवचनों का सार्थक मूल्यांकन होगा। यह 'पाथेय' जन-जन के हाथों का एक सबल बने ऐसी मगल कामनाओं के साथ पुस्तक पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है।

डॉ० राजमल बोरा
औरंगाबाद (महा०)

आत्म-कथन

~: मंगल मैत्री सहित :~

मानव जीवन विसंगतियों की संगति का एवं संगतियों की विसंगति का संगम है। किसमें क्या है, कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे, क्या-क्या, मिला है, मिलकर भी अलग जैसा, क्षीर में नीर होकर भी पानी में तेल जैसा, अस्पष्ट, उलझा और उलटा सा होकर भी सुस्पष्ट, सुलझा और सुल्टा सा प्रतीत होता है। कभी तो ये जीवन बालू में से तेल निकालने जैसा, कपास के ढ़ेर में सूई ढूँढने जैसा, ताश के पत्तों का महल बनाने जैसा या लोहे के चने चबाने जैसा दुरुह लगता है तो कभी गुलाब के फूलों की शय्या जैसा सुवासित और आरामदायक भी महसूस होता है।

मानव-मन की इच्छाएँ और कल्पनाएँ अनंत है। इनकी रक्तबीज की सी उत्पत्ति अनवरत बनी रहती है ऐसे में इनकी पूर्ति कहाँ संभव हो सकती है ! अगर ये पूर्ण हो जाती तो यह धरती स्वर्ग बन जाती परंतु ऐसा होता नहीं है। मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ और ही है। जब भी इच्छा के विपरीत कुछ घटित होता है तो मनुष्य के मन में एक निराशा, भय, घुटन, शंका, हीनता और ईर्ष्या का जन्म होने लगता है। ऐसी कष्टपूर्ण जीवन-यात्रा को मंगलमय बनाने हेतु प्रत्येक मनुष्य के लिए 'पाथेय' जरुरी है।

श्रमण भगवान महावीर ने अपनी अंतिम वाणी

उत्तराध्ययन सूत्र में 'पाथेय' शब्द की महत्ता बताते हुए फरमाया है-

अद्धाणं जो महंतं तु, सपाहेओ पवज्जई ।
गच्छंतो सो सुही होई, छुहा तण्हा विवज्जिओ ।।

अर्थात् जो मनुष्य पाथेय (पथ में काम आनेवाली खाने-पीने की सामग्री) साथ में लेकर मार्ग पर चलता है तो वह भूख और प्यास के दुःख से मुक्त होकर सुखपूर्वक मंजिल को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति धर्म का पाथेय लेकर जीवन पथ पर कदम बढ़ाता है वह पीडा से मुक्त होकर निर्विघ्न रुप से मंजिल प्राप्त कर लेता है।

जीवन साधना है, एक यज्ञ है। उसका सर्वागीण विकास करने और उसको सार्थक बनाने के लिए जिनवाणी को हृदयगम करना जरुरी है। वाणी वह औषधी है जो विश्व-रुपी शरीर के सब रोगों को नष्ट कर उसे चिर-आरोग्य प्रदान कर सकती है। मानव की वाणी में अपूर्व बल है। वह बल न तलवार में है और न बंदूक की गोली में। वाणी मानव के हृदय को परिवर्तित कर देती है। साहित्य के पृष्ठ इस बात के साक्षी है कि रणक्षेत्र में चारण एवं भाट लोग जब शौर्य गीत प्रस्तुत करते थे तो उन गीतों को सुनकर वीरों की भुजाएँ फडफडाने लगती थी और वे अपने प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए टूट पड़ते थे। जब वचन का इतना अधिक प्रभाव होता है तो प्रवचन का विशेष प्रभाव स्पष्ट ही है। महापुरुषो की वाणी के पीछे उनका अनमोल अनुभव

चिंतन और मनन होता है। उनकी ही ज्ञान-गंगा की कुछ बूँदे है .... **'जीवन-पाथेय।'**

इस कार्य को करते हुए प्रत्यक्ष और परोक्षरुप से जिनका भी सहयोग हमें प्राप्त हुआ है, वे सभी पूज्य है, वन्दनीय हैं। एक बार पुनः हम परम तारक तीर्थंकर परमात्मा की वाणी को श्रद्धापूर्वक नमन कर श्रद्धेया गुरूवर्या के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

जिन लोगों ने प्रवचन सुने हैं और जिन्होंने नहीं सुने हैं उन सभी के लिए इस पाथेय की कोई एक पंक्ति या एक शब्द किसी को भी किसी भी रुप में प्रभावित कर सकें, प्रेरणा प्रदान कर सके, पथ प्रदर्शन में सहयोगी हो सके, आवश्यकता के समय आलंबन बन सकें तो उसका जीवन अवश्य ही सार्थक होगा.......

साध्वी युगल निधि-कृपा
डेरावाल नगर, जैन स्थानक
दिल्ली

अनुक्रम

1 जिंदगी...जिंदादिली का नाम है

जो चाहता है कि
दुनिया भी खुश रहे हरदम
तो अपने दिल में
खुशी की तरंग पैदा कर

प्रवचनांश

- यह जिंदगी समय की पटरी पर चलने वाली ऐसी गाडी है जिसमें मंजिल तक पहुँचने का आनंद भी है तो कहीं गत्यावरोधकों का त्रास भी है।
- जिन्दादिली से जीने का राज यही है कि जीवन मे जो भी मिला है उसे पूरी तरह से जीओ।
- किसी भी तथ्य और सत्य को स्वीकारने के लिए या उसका सदुपयोग करने के लिए सच्ची और गहरी समझ चाहिए।
- सामान्य रुप से देखा जाय तो दु:ख व्यक्ति को कमजोर बनाता है और सुख उसे बंधन में डाल देता है। अत: जीवन मे सुख-दु:ख का चुनाव नही, स्वीकार करना होगा।

1 जिंदगी...जिंदादिली का नाम है

मानव का जीवन अमूल्य है। उसका मूल्य रुपयों या अशर्फियों में नहीं आंका जा सकता। यह मनुष्य की अपनी जीवन-प्रणाली और व्यवहार पर आधारित है कि वह जीवन को बहुमूल्य बनाता है या उसका अवमूल्यन करता है। यह जिन्दगी समय की पटरी पर चलने वाली एक ऐसी गाड़ी है जिसमें मंजिल तक पहुँचने का आनंद भी है तो कहीं गत्यावरोधकों का त्रास भी है। यहाँ सभी व्यक्ति अपने-अपने अतीत के सायों में घिरे वर्तमान को मानसिक द्वन्द्वों से घसीटते हुए वक्त गुजारते हैं। ऐसे में लोग जिंदगी को जीते कम हैं और ढोते ज्यादा हैं।

इस संसार मे बहुत कुछ अनदेखा, अनचाहा और अनहोना है; जिसे चाहे-अनचाहे, गाहे-बगाहे, मन से या मजबूरी से झेलना ही पडता है। चाहे जीवन मे सुख की समस्त सामग्री क्यों न हो किन्तु छोटी सी प्रतिकूल घटना भी घाव पैदा कर देती है। प्रिय व्यक्ति के द्वारा घटित अपमानजनक प्रसग पीडा दे जाता है, जीवन-पथ के अनिष्ट संयोग संताप बन जाते हैं। थोडी सी निदा मन की प्रसन्नता छीन लेती है तथा किसी के कटु शब्द जीवन में कडवाहट पैदा कर देते है। ऐसी परिस्थिति में स्वीकार-भाव से जीना ही जिंदादिली है। किसी शायर ने भी यही बात अपने एक शेर मे लिखी है-

जिंदगी जिंदादिली का नाम है ।
मुर्दा दिल खाक जिया करते है ।।

मुर्दा बनी हुई इस जिन्दगी मे जिन्दादिली को पैदा करना ही जीवन की सार्थकता है। जिन्दादिली से जीने का राज यही है कि जीवन में जो भी मिला है उसे पूरी तरह से जीओ। जो भी कुछ अच्छा-बुरा, शुभ-अशुभ और अनुकूल-प्रतिकूल मिला है उसका समग्रता से स्वीकार कर लो। इसका अभिप्राय मात्र इतना ही है कि जी न के समस्त क्षणों का एवं प्रत्येक परिस्थितियों का सदुपयं ा करने की कला सीख लेनी चाहिए।

सरदार वल्लभ भाई पटेल किसी मुकद्द ो के सम्बन्ध में न्यायालय मे विवाद कर रहे थे। तभी उन्हें ',क तार मिला कि उनकी धर्मपत्नी का अचानक स्वर्गवास हो गया है। उन्होंने इस तार को पढकर मेज पर रख दिया और पुनः बहस में लग गये। न्यायालय की प्रक्रिया की समाप्ति के पश्चात् उन्होंने अपने सारे वकीलों से कहा कि घर से ऐसा समाचार मिला है। यह सुनकर सब हतप्रभ रह गए। मित्रों ने कहा- "भाई वल्लभ ! ऐसा समाचार मिलने पर भी आप न्यायालय में बहस करते रहे।"

तब वल्लभ भाई ने अपने मित्रों को जबाब दिया- "मित्र! ईश्वर अपना कार्य कर रहा है और मैं अपना कर्तव्य। यही तो मेरे धैर्य की परीक्षा थी। प्रभु की कृपा से मैं उसमें पूर्ण सफल हुआ हूँ। यदि मैं बहस बीच में ही छोड देता तो मेरा मुवक्किल हार जाता। तब यह बात उसकी मौत से कम दुःखद नहीं होती।"

जो स्वीकार भाव की क्षमता को बढा सकते है उन्हीं के लिए जिन्दादिली से जीना संभव है। किसी भी तथ्य और

सत्य को स्वीकारने के लिए या उसका सदुपयोग करने के लिए सच्ची और गहरी समझ चाहिए। यदि जीवन में सुख हो या दुःख, लाभ हो या नुकसान, निंदा हो या प्रशंसा, मान हो या अपमान इन सभी क्षणो का स्वीकार करना प्रारंभ करेंगे तो प्रतिकूलता का प्रभाव स्वयमेव क्षीण हो जायेगा। वैसे भी दुःखों को स्वीकार करने से जीवन में सजगता बढती है और समाधि मिलती है।

सामान्य रुप से देखा जाय तो दुःख व्यक्ति को कमजोर बनाता है और सुख उसे बधन में डाल देता है अतः जीवन में सुख व दु:ख का चुनाव नहीं स्वीकार करना होगा। प्रतिकार में दु:ख और स्वीकार में सुख यह सूत्र जीवन में जिन्दादिली पैदा कर सकता है। जीवन मे अप्रिय वस्तु, अनचाहा व्यक्ति और प्रतिकूल परिस्थिति का संयोग हो जाय तो उसे प्रसन्नता से स्वीकार करना और इष्ट वस्तु, प्रिय व्यक्ति एवं अनुकूल परिस्थिति का वियोग हो जाय तो उसे भी सहर्ष स्वीकारना सीखें।

एक सूफी फकीर थे जिनकी ख्याति देश-विदेश मे फैली हुई थी। लोग उनका बहुत सम्मान करते थे। उनका यश और सम्मान उनके सद्गुणों का ही प्रतिफल था। धर्म प्रचार करते हुए वे एक ऐसे गॉव में पहुँचे जहाँ के लोग अज्ञानी एवं उपद्रवी थे। उन्होने फकीर का अपमान करने के लिए एक जूतो की माला बनाई और फकीर के गले मे पहना दी। इस अपमानजनक प्रसग पर भी फकीर बडे प्रसन्न थे बल्कि उन्होने माला को खूब आनद से सँभाल लिया।

यह दृश्य देखकर लोग बहुत हैरान हुए क्योकि उन्होने

सोचा था जब हम फकीर का इस तरह से अपमान करेंगे तो फकीर नाराज होगा, कुछ अभिशाप देगा या उत्तेजना से भरकर अपशब्दों का संभाषण करेगा किन्तु फकीर तो शांत मुद्रा में स्थित थे। वे इस प्रकार मंद-मंद स्मित बिखेर रहे थे जैसे कि उनका स्वागत लोगों ने फूलों की माला से किया हो।

आखिर भीड़ में से किसी एक व्यक्ति ने उनसे पूछा- "तुम्हें होश है या नहीं ? यह माला फूलों की नहीं है, जूतों की है।"

यह सुनकर फकीर ने हँसते-हँसते कहा- "मैं तो सिर्फ माला को देख रहा हूँ, चाहे माला फूलों की हो या जूतों की इससे क्या फर्क पडता है। मैं तो मात्र इतना जानता हूँ कि यदि मैं मालियों की बस्ती में जाता तो मेरा स्वागत-सत्कार फूलों की माला से होता और जब मैं चमारों की बस्ती में ही आ गया हूँ तो यहाँ मेरा स्वागत जूतों की माला से ही होगा न ?"

फकीर के इन वचनों को सुनकर सब लोग उनसे प्रभावित होकर नत-मस्तक हो गए। उनके इस जिंदादिली के आदर्श को देखकर सभी ने संकल्प किया कि हम भी जीवन के हर प्रतिकूल मोड़ को स्वीकार करके जियेंगे। अंत में फकीर ने जिंदादिली से जीने की विधि को दो पंक्तियों में गाया-

प्रभु ! तेरे फूलों से भी प्यार...
तेरे कांटों से भी प्यार...

2 अपने मालिक बनो

जिंदगी भर तो हुई
गुफ्तगू गैरों से मगर ।
आज तक हम से
हमारी न मुलाकात हुई ।।

प्रवचनांश

- सुप्त आत्मा को जगाने के लिए दूसरों के मालिक नहीं अपने मालिक बनो।
- यह मानव-समाज का दुर्भाग्य है कि प्रायः सभी Self-oriented नही Others-oriented की जीवन-शैली से जीने के आदी हो चुके है।
- वह आदमी वास्तविक मालिक है जो किसी को मालिक नही बनाता और किसी का मालिक नहीं बनता सिर्फ स्वय का मालिक बनता है।
- होश का दिया भीतर जल जाय तो अपना मालिक बनना आसान है।

2 अपने मालिक बनो

आर्ष ऋषियों का कथन है- **'कलैव ब्रह्म'** अर्थात् कला ही ब्रह्म है। एक कला ऐसी है जो पत्थरों में छिपी मूर्ति को निखारती है। एक कला वह है जो शब्द में पड़े छंद को मुक्त करती है। एक कला वह है जो वीणा में सोये संगीत को जगाती है परन्तु सर्वश्रेष्ठ कला वह है जो सुप्त आत्मा को जगाती है। यह मानव-जन्म सोने के लिए नहीं अपितु सोई हुई आत्मा को जगाने के लिये मिला है।

सुप्त आत्मा को जगाने के लिये दूसरों के मालिक नहीं, अपने मालिक बनो। हमारे अतिरिक्त हमारा मालिक और कोई नहीं हो सकता। हम स्वयं अपनी नियति के मालिक हैं। इस जीवन में जो भी घटित हो रहा है उसके मालिक हम स्वयं है। जब कि आज के मनुष्य की जीवन-शैली ऐसी रही है कि वह अपना मालिक कभी नहीं बन पाया क्योंकि दूसरा व्यक्ति ही उसके जीवन की गतिविधियों का सचालन करता है।

प्रत्येक व्यक्ति आज स्वभाव से नहीं दूसरो के प्रभाव से जी रहा है। यह मानव-समाज का दुर्भाग्य है कि प्रायः सभी Self-oriented नहीं Others-oriented की जीवन-शैली से जीने के आदी हो चुके हैं। यदि किसी ने कह दिया कि तुम बहुत सुन्दर हो, तुम बडे उदार हो, तुम बहुत बुद्धिमान् हो, तुम्हारा कठ बडा मधुर है, तुम बडे लोकप्रिय हो, यह कर्णप्रिय बातें मन को खूब प्रसन्न करती हैं। इसके विपरीत यदि कोई कह दे कि आप बडे क्रोधी हैं, स्वार्थी है, चालबाज

हैं, लालची हैं, ईर्ष्यालु हैं तो यह सुनकर हम नाराज हो *जाते हैं। परिणाम यह आता है कि दूसरों के शब्दों से व्यक्ति* इतना प्रभावित होकर संचालित हो जाता है कि स्वयं के भीतर झांकने का अवसर ही नहीं आ पाता। हमारी प्रसन्नता और नाराजगी दूसरो पर आधारित हो जाती है क्योंकि जीवन में सब कुछ दूसरे लोग तय कर रहे हैं। इसीलिए जीवन की समस्त क्रियाएँ दूसरों को प्रभावित करने के लिए और लोगों की आँखों में जचने के लिए होती है। ऐसे में मनुष्य अपनी सारी मौलिकता खो देता है और दूसरे को मौलिक मान लेता है।

संत गुरजिएफ कहा करते थे तुम एक ऐसे घर के मालिक हो जिस घर में नौकर ही मालिक बने हुए हैं और मालिक ने स्वयं के अस्तित्व को खो दिया है। प्रत्येक नौकर ने मालिक होने की Duty बांध ली है चूँकि सभी नौकर एक साथ तो मालिक नहीं हो सकते। मालिक सोया है तो आधी-आधी घडी के लिये एक-एक नौकर मालिक हो जाता है। जब जो नौकर मालिक बनता है उस वक्त सिर्फ उसी की चलती है। वह किसी और की नहीं सुनता। ऐसी ही मनुष्य की दशा है। जब आदमी क्रोध में हो तब क्रोध मालिक बनकर अपनी चला रहा है। जब उस क्रोध की मालकियत खत्म हो गई तब बहुत पछतावा होता है क्योंकि तब दूसरा मालिक बनकर कहता है कि यह क्रोध करने की भूल कैसे हो गई ? फलतः उस दूसरे मालिक के प्रभाव में आदमी संकल्पबद्ध होकर कहता है कि अब कभी क्रोध नहीं करुँगा। फिर क्रोध करने वाला जब मालिक बनेगा तब वह पश्चाताप

और संकल्प काम में नहीं आयेगा।

अगर दस गुलाम हैं तो मालकियत भी दस गुलामों पर निर्भर रहेगी तभी तो मालिक के मरने पर गुलाम खुश होता है। हाँलाकि गुलाम भाग जाय तो मालिक रोने लगता है। वही आदमी वास्तविक मालिक है जो किसी को मालिक नहीं बनाता और किसी का मालिक नहीं बनता सिर्फ स्वयं का मालिक बनता है। स्वयं का मालिक होने का अपना आनंद है।

ऐतिहासिक काल की एक छोटी सी घटना है। फारस देश का बादशाह नादिरशाह जब हिन्दुस्तान आया तब वह दिल्ली शहर का अवलोकन करने गया। दिल्ली में उसने पहली बार हाथी को देखा तो वह विस्मित हो गया। उसने हाथी पर बैठने की इच्छा व्यक्त की तो उसे हाथी पर बिठाया गया। हाथी पर बैठने के बाद नादिरशाह ने देखा कि आगे महावत अंकुश लिए बैठा है। उसने महावत से पूछा कि तुम यहाँ क्यों बैठे हो ? तब उस महावत ने कहा- "सम्राट् ! यह हाथी है इसको चलाने के लिए महावत की जरुरत होती है।"

नादिरशाह घोड़े की सवारी करने का आदी था। अतः उसने महावत से कहा- "महावत ! तुम ऐसा करो इसकी लगाम मुझे दे दो और तुम नीचे उतर जाओ।"

महावत ने हँसते हुए कहा- "जहॉपनाह ! इसकी कोई लगाम नहीं होती और इसको महावत ही चला सकते हैं।"

यह सुनते ही नादिरशाह छलांग लगाकर हाथी से नीचे उतर गया और दृढता से बोला- "जिसकी लगाम मेरे हाथ में ना हो उस पर बैठना खतरे से खाली नहीं है। मैं अपनी

जिंदगी में ऐसी चीज का मालिक बनना ही नहीं चाहता जिसकी लगाम मेरे हाथ में नहीं हो।" जीवन की लगाम यदि हमारे हाथ में है तो हम स्वयं के मालिक बन सकते हैं और अपनी स्वतंत्रता की सुरक्षा कर सकते हैं।

चरम तीर्थंकर प्रभु महावीर ने कहा तुम स्वयं मौलिक हो अतः अपने मालिक बनो। अपना मालिक बनते ही हम भीतर की संपदाओं से परिचय कर लेते हैं। होश का दीया भीतर जल जाय तो अपना मालिक बनना आसान है। सोया हुआ भीतर का मालिक जाग जाय तो मन का सारा शोरगुल भी शात हो जाता है। जैसे Class-Room में बच्चे नाच-कूद रहे हों और मस्ती-तूफान कर रहे हों लेकिन शिक्षक के प्रवेश करते ही एक पल में शांति छा जाती है, चारों ओर सन्नाटा छा जाता है, सब बच्चे अपनी-अपनी जगह बैठ जाते हैं और अपनी-अपनी किताबें उठाकर पढ़ना-लिखना प्रारंभ कर देते हैं। बच्चे शिक्षक को ऐसा दिखलाना चाहते हैं जैसे शोरगुल था ही नहीं।

ठीक इसी प्रकार अपने भीतर झांकने के बाद दुनिया का सारा शोर, भीड और विसंगतियाँ लुप्त हो जाती है फिर भीतर आकांक्षा, कषाय और विषय का शोरगुल बंद हो जाता है। ऐसी स्थिति मे विकारों को जन्म देने वाली अनेक वृत्तियाँ विलीन हो जाती है। इस शोरगुल से परे स्वय को उपलब्ध करना यही साधना है। चित्त अकंप हो तो स्वय का मालिक होना सुगम हो जाता है। सत्य का उदय हो जाय और स्वय का बोध हो जाय तो अपने मालिक बनते देर नही लगती।

3 सम्बन्धों की बुनियाद

चांद को छूकर रहेगा आदमी
स्वर्ग में शासन करेगा आदमी
किन्तु दुःख इस बात का है दुनिया में
आदमी से दूर रहता है आदमी

प्रवचनांश

- चाहे जिंदगी कितनी ही छोटी क्यों न हो किन्तु उसे कोई भी एकाकी नहीं जी सकता।
- व्यक्ति के मनोभावों को, कल्पनाओं को और योजनाओं को अभिव्यक्त करने एवं साकार करने के लिए सम्बन्ध उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।
- यदि सम्बन्ध किसी से बनाने हैं या बने हुए सम्बन्धों को टिकाना है या टिके हुए सम्बन्धों को आत्मीय बनाना है तो सम्बन्धों की बुनियाद का ठोस और सशक्त होना जरुरी है।
- सम्बन्धों के पौधे को विकसित करने के लिए उचित मात्रा में प्रेम, विश्वास, सहयोग और सहिष्णुता इन चार तत्वों का होना अनिवार्य है।

3 सम्बन्धों की बुनियाद

इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मृत्यु को प्राप्त होता है किन्तु जन्म और मृत्यु के बीच जो जीवन का समय है उसे अकेले व्यतीत करना कोई भी नहीं चाहता। जीवन को हँसते-खेलते गुजारने के लिए किसी का साथ जरुरी है। इसीलिए कहा भी है- Human needs are some food, some fun and someone अर्थात् मनुष्य को जीवन में थोड़ा भोजन, थोडा सा हास्य-विनोद और एक अच्छे साथी की जरुरत होती है। चाहे जिंदगी कितनी ही छोटी क्यों न हो किन्तु उसे कोई भी एकाकी नहीं जी सकता। एक शायर ने सच ही कहा है-

माना कि जिंदगी है चार दिन की ।
बहुत होते हैं यारों चार दिन भी ।।

जब जीने के लिए किसी का संग जरुरी है तो मनुष्य नानाविध प्रकार से सम्बन्ध जोड़ता है और अनेक रिश्ते-नाते बनाता है। हाँलाकि यह सत्य है कि हर सम्बन्ध टूटते हैं और रिश्ते रिसते घाव बन जाते हैं फिर भी मनुष्य हर मोड पर नये-नये सम्बन्ध बना ही लेता है। ट्रेन या बस में सफर करने वाले यात्री भी आसपास के लोगों से परिचय करके मैत्री स्थापित कर लेते हैं। इस प्रकार मानवीय प्रकृति ही ऐसी है जो अनेक सम्बन्धों के कटघरे मे बधती चली जाती है।

हर जातक का सबसे पहला सम्बन्ध अपनी जन्मदात्री

माता से प्रारंभ होता है। उसके बाद वह घर के परिजनों से जुड़ता है। धीरे–धीरे सम्बन्धों का विस्तार घर के इर्द-गिर्द रहने वाले पड़ौसियों से हो जाता है। उम्र के साथ-साथ मित्रों एवं रिश्तेदारों से सम्बन्धों का रेशमी धागा उलझता चला जाता है। तत्पश्चात् समाज और देश से सम्बन्धों का सिलसिला क्रमशः आगे चल पड़ता है।

चिंतकों का कथन है कि सम्बन्ध पुल की भांति होते हैं जो सिर्फ जोड़ने का कार्य करते हैं। व्यक्ति के मनोभावों को, कल्पनाओं को और योजनाओं को अभिव्यक्त करने एवं साकार करने के लिए सम्बन्ध उपयोगी सिद्ध होते हैं। इसलिए सम्बन्ध शब्द की व्याख्या करते हुए बताया गया-सही ढंग से बंध जाना। जिस बंधन में बंधकर थकान, टूटन और घुटन पैदा न होती हो वही सम्बन्ध वास्तविक है। जिस बंधन स्निग्धता, जीवंतता और सुगंध बनी रहती हो वह सम्यक बन्धन कहलाता है।

वैसे तो सम्बन्ध अनेक प्रकार के हैं किन्तु मुख्य रुप से सम्बन्धों को चार भागो में बॉटा गया। पहला सम्बन्ध है- स्वाभाविक सम्बन्ध यानी खून के रिश्ते जो जन्म के साथ सभी को समान रुप से मिलते हैं जिसमे चुनाव के लिए कोई स्थान नहीं होता।

दूसरा सम्बन्ध है- आत्मीय सम्बन्ध जो प्रेम, मैत्री और श्रद्धा के भावो से पनपता है। इसमें व्यक्ति निःस्वार्थ भाव से दूसरों को सुख पहुँचाना चाहता है। इसे हम पूर्वजन्म

के संस्कारों का ऋणानुबंध भी कह सकते हैं।

तीसरा सम्बन्ध है- सामाजिक सम्बन्ध जिसमें सहयोग और सहानुभूति की प्रमुखता होती है। भीतर की करुणा एवं संवेदना से यह सम्बन्ध पनपता है। ऐसा सम्बन्ध भ्रातृ-प्रेम जैसा है।

चौथा सम्बन्ध है- नाटकीय या औपचारिक सम्बन्ध जो दोनों तरफ भार रुप हैं। जिन सम्बन्धों को व्यक्ति मजबूरी से, स्वार्थ से, लज्जा से, भय से और औपचारिकता के कारण नाटक की भॉति निभाता चला जाता है।

चाहे माँ-बेटे का सम्बन्ध हो या पिता-पुत्र का या सास-बहू का या पति-पत्नी का हो, आज सम्बन्धों की दीवारों में सीलन आ गई है और दरारें बढ़ती जा रही हैं। हमारी हालत ऐसी है कि एक ही घर में और एक ही छत के नीचे रहते हुए भी सम्बन्ध शुष्क और नीरस होते जा रहे हैं। आत्मीय और स्वाभाविक सम्बन्धों में चुप्पी की दीवार खडी हो गई है। ऐसे मे चारों ओर सन्नाटा छा जाता है, संवेदनाएँ मरने लगती हैं, एहसास फीके होने लगते हैं, मुहब्बत का दरिया सूखने लगता है और चेहरे अजनबी दिखाई देते हैं। आज किसी भी सम्बन्ध में न मन का माधुर्य रहा और न समरसता का संगीत।

यदि सम्बन्ध किसी से बनाने हैं या बने हुए सम्बन्धो को टिकाना है या टिके हुए सम्बन्धो को आत्मीय बनाना है तो सम्बन्धो की बुनियाद का ठोस और सशक्त होना

बहुत जरुरी है। जैसे पौधे को विकसित करने के लिए खाद, पानी, हवा और धूप की जरुरत होती है। ठीक इसी प्रकार सम्बन्धों की बुनियाद के लिए भी प्रेम रुपी खाद, विश्वास का पानी, सहयोग की हवा और सहिष्णुता की धूप अनिवार्य है।

जहाँ प्रेम होता है या भीतरी लगाव रहता है वहाँ बाहरी सामंजस्य से भी कहीं ज्यादा भीतरी संवादिता स्वतः स्थापित हो जाती है। इसलिए सम्बन्धों में प्रेम को **Lubricant** कहते हैं जो रिश्तों में स्निग्धता लाता है। महाकवि गेटे का कथन है- "प्रेम वह सुनहरी जंजीर है जिससे समाज के हर रिश्ते परस्पर बंधे हुए हैं, बिना प्रेम के जिंदगी मौत है।" यदि सम्बन्धों में प्रेम है तो व्यक्ति अर्थहीन चर्चा एवं वाद-विवाद में नहीं उलझता क्योंकि प्रेम में वैचारिक और व्यवहारिक मतभेदों के लिए कोई स्थान नहीं है।

सम्बन्धों की बुनियाद का दूसरा तत्त्व है-विश्वास। जैसे तेल के अभाव में दीपक प्रकाश नही देता वैसे ही विश्वास के अभाव में सम्बन्धों में खोखलापन आ जाता है। अक्सर सम्बन्धों में शक-संदेह के कारण जीवतता नहीं रह पाती। अतः बात कही कुछ जाती है और समझी कुछ और ही ढंग से जाती है। हजार बार पति कहता है ऐसा मैंने तुम्हें कब कहा था ? किन्तु वह शक्की पत्नी उसे कहॉ समझ पाती है। शंकाशील नज़र जहाँ भी पडती है वहाँ विश्वास राख हो जाता है। शंका स्नेह को उद्विग्न, संकल्प को सत्वहीन और सम्बन्धो को संघर्ष में बदल देती है।

जापान देश की एक सत्य घटना है। एक नवयुवक योद्धा विवाह करके अपने घर लौट रहा था। दोनों नौका पर सवार थे और अचानक समुद्र में तूफान आ गया। नौका डगमगाने लगी और ऐसा लगा जैसे कुछ ही पलों में यह नौका जल समाधि ले लेगी। यह देखकर पत्नी घबराने लगी और उसे बड़ी हैरानी हुई कि उसका पति बिल्कुल निश्चिन्त बैठा हुआ तूफान को देख रहा है। पत्नी की मुखमुद्रा से उसके मनोगत भावों को जानकर उस युवक ने अपने म्यान से तलवार निकाल ली और पत्नी के गर्दन पर रख दी; मात्र बाल भर का फासला रह गया था फिर भी वह घबरायी नहीं बल्कि मुस्कराने लगी।

यह देखकर युवक ने पूछा- "क्या तुम्हे मुझसे कोई खतरा नहीं लग रहा? तुम भयभीत क्यों नहीं हो रही हो?"

तब पत्नी ने कहा- "इसमें घबराने की क्या बात है जब तलवार तुम्हारे हाथ मे है।"

उस युवक ने कहा- "बस यही मेरा उत्तर तुम्हारे लिए भी है। जब तूफान परमात्मा के हाथ मे है तो क्या घबराना? जैसे तुझे मुझ पर विश्वास है वैसे ही मुझे मेरे परमात्मा पर विश्वास है। "सम्बन्धों की बुनियाद का तीसरा तत्व है- सहिष्णुता। सम्बन्धों के लिए वैचारिक सहिष्णुता का होना निहायत जरुरी है। जीवन की वास्तविकता को मुक्त मन से स्वीकार करके सामजस्य बिठा लेना चाहिए। ऑखों मे स्नेह और चेहरे पर स्मित के साथ दूसरो के विचारो का

स्वागत करने से जीवन का फूल खिलता है। इस संसार में एक व्यक्ति में जैसी हम चाहते हैं वैसी योग्यता और गुण नहीं हो सकते अतः सहिष्णु बनकर जिनके पास जितनी योग्यता और जितने गुण हों उसका मूल्यांकन करना सीखे।

सम्बन्धों की बुनियाद का चौथा तत्व है- सहयोग। सहयोग के लेन-देन से सम्बन्धों की नींव मजबूत होती है। सहयोग के आदान-प्रदान से आत्मीयता की गहराई बढ़ती है। सहयोग देने के लिए सदा तत्पर रहे और लेने का मौका हो तो सरलता से लें जिससे सम्बन्धों में स्निग्धता बनी रहेगी।

जैसे एक बीज को पनपने के लिए उचित मात्रा में खाद, पानी, धूप और हवा चाहिए तभी उसका पोषण समय पर हो सकता है ठीक उसी प्रकार सम्बन्धों के पौधो को विकसित करने के लिए प्रेम, विश्वास, सहयोग और सहिष्णुता इन चार तत्वो का पोषण निहायत जरुरी है। कभी-कभी भावुकता वश किसी एक तत्व की अधिकता से सम्बन्धो का सतुलन खो जाने की सभावना हो सकती है। अतः समुचित पोषण से सम्बन्धों की नीव को फौलादी बनाया जाये तो जीवन स्वर्ग बन सकता है।

4 यही है जिंदगी

जीना है तो दु:ख भी है सुख भी है
रोना भी है हँसना भी है यहाँ
बीन एक ही होती है जिस पर
सब राग बजाये जाते हैं

प्रवचनांश

- यदि जीवन को सरिता की उपमा दी जाय तो सुख और दु:ख उसके दो तट हैं।
- जिंदगी विरोध से चलती है अतः हर सुख उतनी ही मात्रा का दु ख अपने साथ ले आता है।
- सुख की चाह से ही दु ख का जन्म होता है। यदि आपने कभी जीतना ही नही चाहा तो आपको हराया भी नहीं जा सकता।
- मजे की बात तो यह है कि जिसे हम सुख कहते है उसकी मात्रा अगर थोड़ी बढा दी जाय तो वह शीघ्र ही दु:ख मे बदल जाता है।
- सब सुख, दु:ख मे बदल जाते है और ऐसा कोई दु:ख नहीं जो सुख में न बदल सके।

4 यही है जिंदगी

जीवन एक ऐसा प्रवाह है जिसकी धारा सदा एक रुप से नहीं बहती। जीवन आदि से अंत तक एक जैसा बना रहे और जीवन-धारा समतल बहती रहे, यह बहुत कठिन है। जीवन में उतार-चढ़ाव, धूप-छाँव, सुख-दुख और सघनता-विरलता आती रहती है। यदि जीवन को सरिता की उपमा दी जाय तो सुख और दुख उसके दो तट है। जीवन की लहरें इन दोनों तटों को स्पर्श करती हैं। इन लहरों में स्थिरता नहीं होती, जब जिस दिशा में हवा चलती है उसी तट को लहरें छू लेती हैं। ऐसी कोई जगह नहीं जहॉ सुख ही सुख हो और ऐसी भी कोई जगह नहीं जहाँ दुख ही दुख हो। इसी का नाम जिंदगी है जहाँ सुख भी है और दुख भी है। जीवन में यदि सुख का एहसास है तो दुख भी साथ ही जुड़ा हुआ है।

सुख-दुख जीवन के ऐसे तथ्य हैं जो एक ही सिक्के के दो पहलु हैं; या यूँ कहना चाहिए कि एक ही चीज के दो हिस्से हैं जो आकाश मे छाई हुई बदलियो जैसे है आते हैं और जाते हैं। इन तथ्यों को ज़ान लेना परख लेना जरुरी है। यदि यह कहा जाय कि दुख जीवन की गलत व्याख्या है और सुख जीवन की सही व्याख्या है तो यह भ्राति है। यह जिन्दगी सुख-दुख के मिश्रण से ज्यादा कुछ भी नहीं है। हमारे जीवन में दोनों पचास-पचास प्रतिशत है। कोई लाख उपाय करे कि मुझे सुख ही सुख मिल जाय तो यह

असंभव है। जिंदगी विरोध से चलती है अतः हर सुख उतनी ही मात्रा का दुःख अपने साथ ले आता है। कहा भी है-

देखा तो खुशी के फूल खिले, सोचा तो गमों की धूल उड़ी ।
कहते हैं बहार लोग जिसे, वह इक साया पतझड़ का है ।।

यदि कोई आपकी प्रशंसा करें तो सुख मिलता है। उस सुख के साथ ही भीतर में अहंकार की मात्रा भी बढ़ जाती है। आज नहीं तो कल यह अहंकार ही दुःख का कारण बनता है। यह बात निश्चित है कि जितना सुख प्रशंसा से मिला उतना ही दुःख जब कोई अपमान करेगा या निंदा करेगा तब मिलनेवाला है। भीतर में जितना अहंकार होगा उतनी गहरी चोट लगेगी। कभी सफलता की ऊँचाई पर चढ़ोगे तो कभी असफलता की खाई में भी गिरोगे। हर जीत हार ले आती है, हर प्रशंसा निंदा ले आती है जैसे हर दिन रात ले आता है। ठीक इससे विपरीत भी यही क्रम है क्योंकि सुख के बीज बोते समय दुःख के बीज साथ ही बोये जाते हैं। सुख की चाह से ही दुःख का जन्म होता है। यदि आपने कभी जीतना ही नहीं चाहा तो आपको हराया भी नही जा सकता। आपका अपमान कोई कर ही न सकेगा क्योकि सम्मान चाहा ही नहीं था।

भगवान महावीर का दर्शन हमें सुख-दुःख से पार होने की प्रेरणा देता है। इसलिये सुख-दुःख का वास्तविक स्वरुप जानना होगा।

सुख-दुःख की व्याख्या करते हुए विद्वानों ने कहा है- **'अनुकूल वेदनीयं सुखम्' तथा 'प्रतिकूल वेदनीयं दुःखम्'**

अर्थात् जो मन के अनुकूल हो वह सुख है और जो मन के प्रतिकूल हो वह दुःख है। सुख दुःख तो मन की परिभाषा है। यह सभी के लिए अनुभूत बात है कि जब कोई खुश होता है तो समय जल्दी जाता है और दुख में समय सरकता ही नहीं। मान लो कोई अप्रिय व्यक्ति तुम्हारे घर घड़ी भर बैठ जाय तो ऐसा लगता है कि वर्षों बीत गए और कोई प्रिय व्यक्ति घंटो भी बैठ जाए तो भी **पल** भर लगता है। इससे स्पष्ट है कि समय का माप **सापेक्ष है**; वह मन पर निर्भर है। इसी तरह सुख और दुख भी सापेक्ष है। विश्व के प्रसिद्ध वैज्ञानिक एलबर्ट आइन्स्टीन ने भी इस सदी में विज्ञान को यह सापेक्षवाद का सिद्धांत दिया था।

किसी राज्य की सीमा के बाहर जंगल में एक महात्मा की कुटिया थी। राजा भी प्रतिदिन उनके दर्शन एवं सत्संग का लाभ लिया करता था। महात्मा पहुंचे हुए संत थे। एक दिन राजा ने उनके चरणों में निवेदन करते हुए कहा- "महात्मन्! एक बार मेरे महल में पधारकर मुझे कृतार्थ करें।" राजा की विनती से संत एक दिन राजमहल के मेहमान हुए। राजा ने उनकी सेवा में श्रेष्ठतम सुविधाएँ उपलब्ध करा दी। रात्रि में जब सोने का समय हुआ तो राजा ने मुलायम बिस्तर बिछा दिया। परंतु महात्मा तो उन मुलायम बिस्तर पर सो नहीं सके वे रातभर करवटे बदलते रहे। आखिर मध्यरात्रि में सत नीचे फर्श पर लेटे तो उन्हें आराम से नींद आ गई।

प्रातः राजाने देखा कि महात्मा फर्श पर सो रहे हैं तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने जब कारण पूछा तो महात्मा

ने कहा- "राजन्! किसी के लिए यह मुलायम बिस्तर सुख का कारण हो सकता है और किसी के लिए दुःख का कारण सिद्ध हो जाता है।"

यह सुनकर राजा ने कहा- "महात्मन्! मैं भी आपकी बात से सहमत हूँ। कल रात मैं मुलायम बिस्तर को छोड़कर फर्श पर लेटा तो सारी रात करवटें बदलकर निकालीं।"

तब महात्मा ने उचित अवसर जानकर राजा को जिंदगी का राज बताते हुए कहा- "राजन्! जीवन के सारे सुख-दुःख हमारे मन पर निर्भर है। जो चीज आज सुख दे रही है वह कल दुखदायक बन जाती है। मजे की बात तो यह है कि जिसे हम सुख कहते हैं उसकी मात्रा अगर थोड़ी बढ़ा दी जाय तो वह शीघ्र ही दुःख में बदल जाता है। जैसे भोजन करना सुखद होता है लेकिन कोई ज्यादा भोजन कर ले तो दुख में बदल जाता है। यहाँ सब सुख, दुःख में बदल जाते हैं और ऐसा कोई दुःख नही जो सुख में न बदल सके।" किसी कवि ने कहा है-

सुख में ही सब यार होते है
दुःख में कपड़े भी भार होते है
सुख दुःख दोनों में जो सम है
वे विरले सौ में चार होते है

5 धीरे सब कुछ होय

कारज धीरे होत है
काहे होत अधीर
समय पाय तरुवर फलै
केतिक सींचो नीर

प्रवचनांश

- जल्दी से भरा हुआ चित्त अस्त-व्यस्त और अराजक होता है।
- जल्दबाजी का अर्थ है काम को जैसे-तैसे निपटाना, बेहोशी में ही कार्य को पूर्ण कर देना।
- व्यक्ति जितनी जल्दबाजी करेगा उतनी ही हर कार्य मे गड़बड़ होती है क्योंकि अधीरता चित्त को विह्वल बना देती है।
- इस दुनिया में जो चीज जितनी क्षुद्र होती है उतनी जल्दी प्राप्त हो जाती है और उतनी ही जल्दी खो जाती है।
- जितना ज्यादा धैर्य होगा उतनी ही बडी घटना घटती है।

5 धीरे सब कुछ होय

इस आधुनिक युग में मनुष्य के सारे जीवन-सूत्र उलझ गये हैं। उसे न जीवन के अर्थ का पता है न अंत का। आज के मानव ने गति को ही जीवन की पहचान बना लिया है। शायद इसीलिए इस सुविधा के युग मे व्यक्ति एक जगह से दूसरी जगह बहुत जल्दी पहुँच जाता है। हम जहॉ हैं वहाँ से किसी और जगह यदि पहुँच जाते हैं तो इसी का नाम जिंदगी नही है।

पिछले पचास-सौ सालों से मनुष्य का समय ऐसे ही इन्तजाम जुटाने में लगा हुआ है। जीवन की तीव्र गति तो टेलिफोन और टी.वी. से भी हमें दृष्टिगोचर हो रही है। जैसे-जैसे जीवन जीने की त्वरा बढती जा रही है वैसे-वैसे जल्दबाजी भी बढती जा रही है। यह त्वरा तो हमारे भीतर है। जल्दी से भरा हुआ चित्त अस्त-व्यस्त और अराजक होता है। वह पुराने जमाने की बात थी जब लोग कभी-कभी जल्दी मे होते थे फिर भी कोई ऐसी जल्दी नहीं होती थी। बैलगाडी पकडने में कोई जल्दी होती ही नही, दिक्कत तो रेलगाडी पकडने में होती है और हवाई जहाज के साथ तो और भी अधिक मुश्किलें हैं। जब भीतर मे त्वरा हो तो चाहे हम बैलगाडी में बैठे या हवाई जहाज में, इससे उसका कोई सम्बन्ध नही है।

आज के भौतिक युग मे मनुष्य के पास समय कम है, शक्ति सीमित है, कार्य अनेक है और जीवन छोटा है। ऐसी स्थिति में यहॉ हर आदमी अपनी-अपनी दौड में लगा हुआ

है। कितना भी समय हो किन्तु वह सदा कम मालूम पड़ता है फलस्वरुप No Time की समस्या सभी के साथ जुड़ी हुई है। कितनी भी शक्ति क्यों न हो किन्तु वह कम महसूस होती है क्योंकि कार्य तो सागर जितना है और शक्ति चुल्लुओं जैसी है। यही कारण है कि हमारे भीतर अस्त-व्यस्तता बढ़ गई है।

इस आधुनिक युग में हर व्यक्ति मानो चौबीस घंटे जल्दी में ही होता है। England के प्रधानमंत्री विन्स्टन चर्चिल ने एक बार अपने किसी मित्र को चाय पर आमंत्रित किया। जब चाय पीने का क्षण आया तब चर्चिल ने देखा कि मित्र तो बड़ी शीघ्रता के साथ जल्दी-जल्दी चाय की घूँट भरता जा रहा है। चर्चिल जब तक एक घूँट भरते तब तक वह चार घूँट पी जाता था। कुछ देर तक तो वे अपने मित्र को देखते रहे फिर मुस्कराकर बोले-"मित्र ! क्या यहाँ के बाद तुम्हें कहीं और भी जाना है ?"

मित्र ने झट से कहा- "नहीं, में तो केवल आपसे ही मिलने आया हूँ।"

तब चर्चिल ने हँसते-हँसते कहा- "मित्र ! फिर इतनी जल्दी क्या है ? जब आप मुझ से ही मिलने आये हैं तो कम से कम चाय तो आराम से पी लो।" यह सुनकर मित्र चौंक गया।

जल्दबाजी का अर्थ है काम को जैसे-तैसे निपटाना, बेहोशी में ही कार्य को पूर्ण कर देना। कोई भी कार्य जब बिना ध्यान के किया जाता है तो उस कार्य की नींव कच्ची रह जाती है। दरअसल जल्दी में हम सदा चूक जाते हैं।

यह सबका अनुभव है कि जब कोई जल्दी में होता है तब कार्य पूर्ण होने में ज्यादा देर लगती है। कल्पना करें कि ट्रेन पकड़नी है और कोई व्यक्ति जल्दी में हो तो चाबियाँ जहाँ रखी है वहाँ पर नहीं मिल पाती, ऐनक पहनना ही भूल जाते हैं, जूता गलत पैरों में पहन लिया जाता है और नीचे के बटन ऊपर लग जाते हैं। इस तरह जो गलत काम हो गया है उसे सही करने में समय लग जाता है क्योंकि अधीरता चित्त को विह्वल बना देती है। व्यक्ति जितनी जल्दबाजी करेगा उतनी ही हर कार्य में गड़बड़ होगी।

ऐसा इसलिए होता है कि जल्दबाजी में आप अपनी मालकियत खो देते हैं। ऐसी स्थिति में ऊँगलियाँ काँपने लग जाती है क्योंकि आपका मन गड़बड़ा रहा है, आत्मा प्रकंपित हो रही है। यह भीतर की कंपन बाहर बटन को सही नहीं लगने देती, बटन गलत गाज में लग जाते हैं फिर आगे के बटन भी सही नहीं लग पायेंगे जब तक पहला बटन न बदला जाय। इसलिये एक अफ्रिकी कहावत है-

Hurry bequeaths disappointment

अर्थात् जल्दबाजी अपनी वसीयत में निराशा दे जाती है। क्योंकि जल्दबाजी पछतावे की बहन है।

बहुत से लोग जल्दबाजी के कारण अपनी नस-नाड़ियों को, कोशिकाओं को एवं स्नायुओं को हर समय कसे रहते हैं जिससे सदा तनाव बना रहता है। आम तौर पर ऐसे लोग अत्यंत भावुक और बेचैन हो जाते हैं। विश्व के हृदयविशेषज्ञ चिकित्सकों का कहना है कि यदि मनुष्य जल्दबाजी, चिंता और पौष्टिक पदार्थ छोड़ दे तो उसे हृदय

रोग कभी नहीं होगा।

जल्दबाजी में कार्य-शक्ति की क्षमता समय से पूर्व समाप्त हो जाती है। इसलिए कहावत बनी- 'जल्दी का काम शैतान का होता है।' जल्दी-जल्दी चलना, जल्दी-जल्दी बात करना, जल्दी-जल्दी खाना और जल्दी-जल्दी काम करना नुकसानदायी सिद्ध होता है। जल्दबाजी में व्यक्ति अक्सर सोचता है कि वह समय की बचत कर रहा है किन्तु उसकी मांसपेशियों पर इतना ज्यादा दबाव पड़ता है कि कार्य बिगड़ जाते हैं।

रुस के प्रसिद्ध तत्त्व-चिंतक टॉल्स्टॉय के पास एक युवक आया और उसने जिज्ञासा व्यक्त की- 'सफलता का रहस्य क्या है ?' टॉल्स्टॉय ने एक शब्द में उत्तर देते हुए कहा, "धैर्य... बिना धैर्य के हर कार्य अधूरा है।"

युवक ने कहा- "यह कैसे हो सकता है क्योंकि मैं कितना भी धैर्य रखूँ और प्रतीक्षा करूँ फिर भी क्या चलनी में पानी भर पाऊँगा।"

टॉल्स्टॉय ने कहा, हाँ धैर्य रखो तो चलनी में भी पानी अवश्य भरा जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति चलनी को पानी में तब तक रखे जब तक कि वह पानी जमकर बर्फ न बन जाय तो चलनी में भी पानी भरा जा सकता है।

यह सुनकर युवक को सफलता का रहस्य समझ में आ गया कि इतना धैर्य हो जहाँ पानी जम कर बर्फ बन जाय तो पानी चलनी में भी ठहर सकता है।

जीवन का एक नियम है कि यदि तुम धीरज रख

सको तो सभी चीजें पूरी हो सकती है। कच्चे फल मत तोड़ो, थोड़ा धैर्य रखो वे फल पकेंगे और गिरेंगे; तुम्हें वृक्ष पर चढना भी नहीं पड़ेगा और तोड़ना भी नहीं पड़ेगा। जो कुछ भी समय आने पर होता है वह शुभ होता है।

धैर्य सुनार की तरह है। सुनार जब भट्टी में सोने को डालता है तब बड़ी धैर्यता की जरूरत होती है, वहाँ जल्दबाजी नहीं चलती। इस दुनिया में जो चीज जितनी क्षुद्र होती है उतनी जल्दी प्राप्त हो जाती है और उतनी ही जल्दी से खो भी जाती है। जल्दबाजी उथले आदमी का लक्षण है, बचकानापन है। जैसे छोटे बच्चे आम की गुठली जमीन में बो देते हैं और घड़ी भर बाद फिर निकालकर देखते हैं कि अभी अंकुर आया या नही। आप जानते है ऐसे में वह बीज अंकुरित नहीं हो सकता जितनी बड़ी चीज को हम खोजने निकले हैं उतना बडा धैर्य भी चाहिए। जितना ज्यादा धैर्य होगा उतनी ही बडी घटना घटती है। सत कबीर ने भी कहा है-

धीरे-धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय ।
माली सींचै सौ घड़ा ऋतु आये फल होय ।।

जरा सब्र रखो, बादल छंटकर धूप निकल आती है... जरा सी मुहब्बत से घर भर में खुशी छा जाती है... जरा सी आशा से दुर्दिन में प्रसन्नता लहरा जाती है..।

6 जीवन का यथार्थ

हर सुबह शाम की शरारत है
हर हंसी अश्रु की तिजारत है
मुझसे पूछो न अर्थ जीवन का
जिंदगी मौत की इबादत है

प्रवचनांश

- दुनिया में एक ही सच है और वह है 'मृत्यु'। जो बना है वह मिटेगा; जो सजाया है, संवारा है वह एक दिन उजड़ेगा।
- जीवन जीते हुए यदि मृत्यु का तथ्य समझ आ जाय तो सारी शक्तियाँ कल्याण की दशा में लग जाती है।
- यदि जगत में मृत्यु न होती तो धर्म की खोज भी नहीं हो सकती। जितना गहन मृत्यु का बोध होगा उतनी ही धर्म की गहन खोज होगी।
- मृत्यु उसी दिन आ गई जिस दिन हम पैदा हुए थे। एक पैर हमारा जीवन है तो दूसरा मौत है।

6 जीवन का यथार्थ

मनुष्य-जीवन की एक अजीब कहानी है। इस धरातल पर जन्म तो सभी का समान रुप से होता है यानी सभी रोते हुए जन्म लेते हैं किन्तु अंत सबका एक सा नहीं है। इसका कारण यह है कि जन्म के बाद जीवन जीने की शैली सभी की भिन्न-भिन्न है।

उपनिषद में लिखा है कि दुनिया में एक ही सच है और वह है- 'मृत्यु'। सारा जीवन मृत्यु पर समाप्त हो जाता है। सब होना अंततः न होना हो जाता है। जो बना है वह मिटेगा, जो सजाया है, संवारा है वह एक दिन उजड़ेगा। मृत्यु होगी यह निश्चित है किन्तु कब होगी इसका कोई पता नही। मौत की कोई तारीख या घड़ी निश्चित नही होती। यही कारण है कि मृत्यु की चिंता होती है जिससे दुःख एवं भय पैदा होता है।

मृत्यु स्वाभाविक है अत. मौत से छुटकारा नहीं हो सकता लेकिन मृत्यु को भय से छुटकारा हो सकता है। हर व्यक्ति चाहता है कि मेरी मृत्यु ऐसी हो कि दोबारा जन्म ही न लेना पडे। जीवन का न्याय बडा अद्‌भुत है। इसके विधि-विधान हर न्यायालय से अलग है। रस्सी यदि टूट जाय तो नट हो कि घट उसे नीचे गिरने से रोका नहीं जा सकता। संत प्रभुदास ने भी कहा है-

जब लग तेल दीये में बाती
जगमग-जगमग होय।
चुक गया तेल बिनस गई बाती
ले चल ले चल होय।।

मृत्यु के विषय में तीन मंतव्य दिये जा सकते हैं। पहला, मुत्यु जीवन का अंत है; दूसरा, मुत्यु जीवन की मजबूरी है और तीसरा, मृत्यु जीवन का मूल्य है। जो लोग जीते नहीं किन्तु उन्हें जीना पड़ता है उनकी दृष्टि में मृत्यु जीवन का अंत है। जिन्हें शेष सब कुछ आता है किन्तु जीना नहीं आता उनके विचार में मृत्यु जीवन की विवशता या मजबूरी है। जिन्हें जीवन का बोध है उनकी दृष्टि में मृत्यु जीवन का मूल्य है। इसलिए कहा है- 'जीना है तो मरना सीखो'।

जीवन जीते हुए यदि मृत्यु का तथ्य समझ आ जाय तो सारी शक्तियाँ कल्याण की दिशा में लग जाती है। यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने कहा यदि जगत में मृत्यु न होती तो धर्म की खोज भी नहीं हो सकती । जितना गहन मृत्यु का बोध होगा उतनी ही धर्म की गहन खोज होगी। इसलिये तो जैसे-जैसे उम्र हाथ से फिसलती है वैसे-वैसे धर्म की चिंता शुरु हो जाती है। जवानी में जीने का नशा इतना ज्यादा होता है कि मंदिर विस्मृत रहता है पर जैसे बुढ़ापा करीब आता है वैसे ही धर्म की खोज शुरु होती है।

मृत्यु जीवन का यथार्थ है। इसलिए महापुरुषों ने जीवन को पानी के बुलबुले और मिट्टी के कच्चे घडे जैसा क्षणभंगुर कहा है लेकिन जीवन की इस सच्चाई को जानकर भी हम नहीं जानते। ऐसे में जीवन का जो प्रयोजन है वह समझ मे नही आता और हम जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत जीवन व्यवस्था जुटाने मे मृत्यु भूल जाते हैं। यदि इस बात का सतत स्मरण रहे कि मृत्यु निश्चित घटना है तो उनके जीवन का रुप ही परिवर्तित हो जायेगा।

गौतम बुद्ध के जीवन-काल की एक घटना है। किसी

एक गांव में गौतम बुद्ध का आगमन हुआ। उस दिन वहाँ एक विधवा स्त्री के इकलौते बेटे की मृत्यु हो गई थी। वही उसका एकमात्र सहारा था और उसकी हर आशा का दीपक था जिसे देखकर वह जीवन बीता रही थी। वह बेटे की लाश को लेकर गांव में घूमने लगी। कभी वैद्यों के तो कभी तांत्रिकों के द्वार खटखटाए किन्तु सारे उपाय मृत्यु के सामने निरुपाय हो जाते थे। किसी ने उसे कहा कि इस तरह से लाश को ढोना व्यर्थ है; यदि कोई चमत्कार ही घटित हो जाय तो इसे जीवन मिल सकता है। उस स्त्री की दयनीय अवस्था को देखकर एक बुजुर्ग व्यक्ति ने उसे बताया- "बेटी! आज हमारे परम सौभाग्य से गौतम बुद्ध आये है, वे साक्षात् परमात्मा है, तू उनके पास जा क्योंकि उनके श्रीचरणों में ऐसा चमत्कार है कि तेरा बेटा अवश्य जिंदा हो सकता है।"

उस दुखियारी स्त्री ने एक मिनिट की भी देरी नहीं की और बुद्ध के पास पहुँच गई। बेटे की लाश को बुद्ध के चरणों मे रख दिया। बुद्ध ने उसके भावों को समझते हुए उसे मधुर शब्दो में आश्वासन देते हुए कहा- "बहन! तेरा बेटा जिंदा अवश्य हो सकता है किन्तु एक शर्त है जो पूरी करनी होगी कि तू गांव में जा और उस घर से मेथी के कुछ दाने ले आना जिस घर में कभी कोई मृत्यु न हुई हो।"

यह सुनते ही वह बेचारी स्त्री गांव की ओर भागी। गांव का एक-एक द्वार खटखटाया पर सभी लोग यही कहते थे जितनी मेथी चाहिए उतनी ले जा किन्तु शर्त सुनते ही सब मना कर देते थे। इस तरह शाम होते-होते उसने यह जान लिया कि गांव में एक भी घर ऐसा नहीं है जहॉ

किसी की मृत्यु घटित नहीं हुई हो। बुद्ध के श्रीचरणों में लौटकर उसने कहा- "भगवन् ! मैं अब समझ गई कि आपने मेथी के दाने लेने मुझे क्यों भेजा। मेरी आँखें खुल गई हैं अब मुझे सन्यास दे दो। इससे पहले कि मेरी मौत आये मैं कुछ कर लूँ। बेटा तो चला गया लेकिन मेरा जाना भी दूर नहीं है।"

मृत्यु एक अनिवार्य तथ्य है अतः उससे छुटकारा नहीं हो सकता, यदि जिंदगी को समझ लिया जाय तो मौत समझ में आ जाती है। वैसे जीवन और मृत्यु एक ही घटना के दो छोर है। ऐसा मत सोचना कि मृत्यु कोई दुर्घटना है या मृत्यु कहीं बाहर से आती है। सारे पुराणों में कथाएँ इस प्रकार मिलती है जैसे कोई यमदूत को भेज रहा है और वह भैंसे पर सवार होकर लेने आ जाता है। परन्तु यह सारी बातें कल्पनाएँ मात्र है। जीवन का यथार्थ तो यह है कि मृत्यु उसी दिन आ गई जिस दिन हम पैदा हुए थे। एक पैर हमारा जीवन है तो दूसरा मौत है। इसलिए मृत्यु की उपेक्षा नहीं कर सकते और ना ही उसे Postpone कर सकते हैं। जैसे गंगोत्री और गंगासागर को अलग नहीं किया जा सकता वैसे ही मृत्यु को जीवन से अलग नहीं किया जा सकेगा।

जीवन में इन पंक्तियों को सदैव स्मरण में रखें-

हर स्वप्न है घुल-घुल के सुलाने के लिए
हर याद है रो-रो के भूलाने के लिए ।
जाती हुई डोली को आवाज मत लगा
इस गांव में आये हैं सब जाने के लिए ।।

7 सलाह देना प्रिय है

अरे सुधारक जगत् के,
मत कर चिंता यार
दिल ही तेरा जगत है
पहले इसे सुधार

प्रवचनांश

- इस दुनिया में लोग विचारों से प्रभावित नहीं होते जीवन से प्रभावित होते हैं।
- जो अपनी कही बात पर स्वयं आचरण नहीं करते और दूसरों को उपदेश देते है उनका उपदेश दो कानों के समान होता है; एक कान में डाला और दूसरे कान से निकल गया।
- स्मरणीय तथ्य यह है कि जब तक कोई सलाह नहीं मांगे तब तक सलाह नहीं देनी चाहिए।
- जो तुम दूसरों को कहना चाहते हो उसे पहले परखो, जॉचो उसे जीवन की कसौटी पर कसो।
- जब भी सलाह देनी हो तो अनुभव करके देना उसके साथ सहानुभूति रखकर देना।

32 सलाह देना प्रिय है

लुकमान हकीम से एक बार किसी ने प्रश्न किया- "इस दुनिया में ऐसी कौनसी चीज है जिसे सभी देते है किन्तु कोई लेना नहीं चाहता?" तब लुकमांन ने एक शब्द में उत्तर देते हुए बताया था वह चीज है 'सलाह'। जो दी तो खूब जाती है किन्तु उसे लेना कोई भी नहीं चाहता। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति सलाह देने में बड़ा कुशल है। सलाह देना सबको प्रिय है, सलाह बाँटना उसका ध्येय बन गया है। यद्यपि वह सलाह, वह समझ उसके अपने काम नहीं आती फिर भी दूसरों को देने में उसे बड़ा रस है। व्यक्ति इस बात पर कभी विचार ही नहीं करता कि जो सलाह उसके स्वयं के उपयोग में नहीं आती वह दूसरे के काम कैसे आयेगी?

इस दुनिया में लोग विचारों से प्रभावित नहीं होते जीवन से प्रभावित होते है। यदि हमारा जीवन अपने ही विचारों के विपरीत है तो यह स्वाभाविक ही है कि लोग हमारा जीवन देखेंगे, वे विचारों को नहीं देखेंगे। बाते तो हम अग्नि की करें और जीवन में राख ही राख हो तो...? बातों में तो सभी के अग्नि हो सकती है क्योंकि बातें अच्छी करने में लगता क्या है ? एक कहावत भी है हल्दी लगे न फिटकरी रंग चोखा हो जाय। किसी के दिमाग में वाणी के माध्यम से कचरा भरना हो तो उसके लिए खर्चे की जरुरत ही नहीं है लेकिन अब सुननेवाले थक गये हैं, ऊब चुके हैं, अब वे उपदेश से छुटकारा चाहते हैं। उर्दू के एक शायर ने भी

बड़ी मजेदार बात कही है- **"खुद मियाँ फजीहत औरों को नसीहत।"** अर्थात् जो अपनी कही बातों पर स्वयं आचरण नहीं करते और दूसरों को उपदेश देते है। उनका उपदेश दो कानों के समान होता है; एक कान में डाला और दूसरे कान से निकल गया।

इस दुनिया में सलाहकारों की संख्या इतनी अधिक है कि लोगों की बेवकूफी बढ़ती जा रही है। किसी चिंतक ने कहा है- यदि इस संसार में इतने सलाहकार न होते तो यह दुनिया बेहतरीन होती। सलाह देने वाला इस बात की तनिक भी फिक्र नहीं करता कि उसके जीवन में सलाह के लिए कोई प्रमाण है या नहीं? यही कारण है कि उसकी सलाह का कोई मूल्य नहीं होता। सलाह का मूल्य तभी बढ़ता है जब सलाहकार स्वयं भी उस कार्य को करता हो। अफसोस यह है, सलाहकार जो कहता है अक्सर उससे विपरीत उसका जीवन होता है। इसीलिए सलाह देने की कुशलता महँगी पड रही है। इस कुशलता से आज तक किसी को लाभ नही हुआ बल्कि अप्रियता ही बढ़ रही है।

स्मरणीय तथ्य यह है कि जब तक कोई सलाह नहीं मांगे तब तक सलाह नहीं देनी चाहिए। जब सलाह हमारे जीवन के अनुभव से निकलेगी तभी वह किसी के जीवन मे राह बन सकती है, किसी के अंधेरे जीवन को प्रकाशित कर सकती है। अतः सलाह देते समय दो बातों को ख्याल में रखना। पहली बात यह है कि बिना मांगे सलाह मत देना क्योंकि अनचाही सलाहें कोई पसंद नहीं करता। बिन मांगी

सलाहों का मतलब होता है कि हम दूसरे को अज्ञानी सिद्ध करने की कोशिश कर रहे हैं जिससे उनके अहंकार को चोट पहुँचती है। मुफ्त में सलाह बांटना स्वयं के लिए अहितकर है क्योंकि लोग मुफ्त की चीजों का मूल्य नहीं समझ पाते।

शिवशंकर अपने गांव के एक अमीर व्यक्ति के पास पहुँचा। सुबह-सुबह उसने उस अमीर आदमी का द्वार खटखटाया। उस अमीर ने शिवशंकर की ओर देखा तो समझ गया कि बस दान मांगने आया होगा, मंदिर या मस्जिद के लिए मांग होगी। शिवशंकर ने कहा- "मैं दान मांगने नहीं आया, मुझे तो काम ही कोई दूसरा आ गया था।" यह सुनकर अमीर व्यक्ति आश्वस्त हुआ और उसने पूछा- "क्या काम आ गया?"

तब शिवशंकर ने कहा- "थोडे पैसे की जरुरत है क्योंकि मै एक हाथी खरीदना चाहता हूँ।"

अमीर व्यक्ति ने कहा- "लगता है तुम पागल हो गये हो, जब हाथी खरीदने के लिए पैसा नहीं है तो हाथी रखने के लिए कहाँ से इन्तजाम जुटाओगे?"

शिवशंकर ने कहा-"माफ करिये जनाब! मैं आपके पास पैसा मांगने आया हूँ, सलाह मागने नहीं। क्योकि आपसे वही मांगा जा सकता है जो आपके पास है। जो आपके पास है ही नहीं तो मांगा क्यो जाये?"

दूसरी बात यह है कि जब कोई सलाह मांगने आये तो अपनी अनुभूति से विपरीत सलाह मत देना। उस समय

विचार कर लेना कि स्वयं की अनुभूति क्या है? जब जीवन में विचार और कृत्य का तालमेल हो तभी जीवन में संगीत पैदा हो सकता है। अतः सलाह देने में ईमानदार बनो। जो तुम दूसरों को कहना चाहते हो उसे पहले परखो, जांचो उसे जीवन की कसौटी पर कसो। कहा भी है- **Example is better than advice** अर्थात् उदाहरण प्रस्तुत करना उपदेश देने से अच्छा है।

एक सूफी फकीर के पास एक स्त्री अपने बेटे को लेकर आई और उसने कहा- "इसे जरा समझा दीजिए, हमारी तो मानता ही नहीं। इसके पिता शिक्षक हैं, वे भी इसे समझा-समझा कर हार गए किन्तु यह किसी की भी नहीं मानता। यह बहुत गुड़ खाता है।"

फकीर ने कुछ सोचा, समझा और उस स्त्री से कहा- "बहन ! सात दिन के बाद आना।"

आठवें दिन वह फकीर के चरणों में पहुँची। बेटे ने फकीर के चरण स्पर्श किये तब फकीर ने कहा- "बेटा ! गुड़ खाना बंद कर दो।"

उस स्त्री ने फकीर से कहा- "यदि आपको इतने से ही शब्द कहने थे तो सात दिन की देरी क्यों की?"

फकीर ने कहा- "बहन ! दरअसल बात यह है कि मैं खुद भी गुड़ खाने का बहुत शौकिन हूँ। इसे गुड खाने के लिए मना करूँ उससे पूर्व मैं स्वयं तो गुड खाना छोड़ दूँ। उससे पहले मैं इसे सलाह देता तो वह भी एक झूठी सलाह

होती। कथनी से करनी का प्रभाव अधिक होता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में ऐसा कार्य करना चाहिए जिससे दूसरे व्यक्तियों के जीवन पर उसका सद्प्रभाव पड़े। इतिहास साक्षी है कि श्रीराम का जीवन उपदेशपूर्ण न होकर आदर्शपूर्ण बना। गुरु तेग बहादुर का आत्म-बलिदान, गुरु गोविंद सिंह के बच्चों का समर्पण, उनके आदर्श जीवन का ही परिचय देता है।

फकीर की बात को बेटा ध्यानपूर्वक सुन रहा था। उसने फकीर के चरणों में झुककर कहा- "मैं आज से ही गुड़ खाना छोड़ देता हूँ।" हमारी सलाह में मूल्य तब आयेगा जब हम स्वयं भी उस पथ पर चलेंगे। सभी मनीषियों ने उपदेश की अपेक्षा आदर्श को अधिक महत्व दिया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं- **पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जो आचरहिं ते नर न घनेरे।** और इसी बात का समर्थन करते हुए महात्मा कबीर ने एक दोहे में लिखा-

कथनी थोथी जगत में करनी उत्तम सार ।
कथनी तज करनी करो तब पावो उद्धार ।।

जब भी सलाह देनी हो तो अनुभव करके देना उसके साथ सहानुभूति रखकर देना। हमारी हर सलाह दूसरे को बदले या न बदले किन्तु स्वयं को अवश्य बदलती है।

8 निश्चिन्त जीवन

तन से सेवा कीजिए
मन से भले विचार
धन से इस संसार में
करिये पर उपकार

प्रवचनांश

- जिसका चिंतन दिव्य नहीं होता उसी को चिंता सताती है।
- निश्चिन्त जीवन जीने का सूत्र है- जो तुम्हारे पास है उसे दूसरो को देने मे तुम स्वतत्र हो अतः मुक्त मन से देना सीखो।
- सृष्टि का सनातन नियम है जो दिया जाता है वही लौटता है।
- अपना समय, समझ, सामग्री और सामर्थ्य को दूसरो के हित में लगा दो।
- स्मरण रहे कि जब देना ही है तो शत्रु हो या मित्र, सज्जन हो या दुर्जन सभी को दो।

8 निश्चिन्त जीवन

मानव मन की दो धाराएँ है- एक है चिंता की धारा और दूसरी है चिंतन की धारा। जिसके जीवन में दिव्य विचार नहीं है उसका चिंतन भी दिव्य नहीं हो सकता। जिसका चिंतन दिव्य नहीं होता उसी को चिंता सताती है फलतः वह कुंठाग्रस्त होकर हीनता का शिकार बन जाता है। आज सभी की यही शिकायत है कि हमें कोई नहीं पूछता; हमें कोई प्रेम नहीं देता; हमारे पास कुछ नहीं है; हमारा कोई मूल्य नहीं है इसी चिंता से सभी पीड़ित हैं।

निश्चिन्त जीवन जीने का सूत्र है- "जो तुम्हारे पास है उसे दूसरों को देने में तुम स्वतंत्र हो अतः मुक्त मन से देना सीखो। अपनी शक्ति का लाभ आवश्यक पात्र को निःस्वार्थ भाव से देना चाहिए।" यह सम्यक् चिंतन मन में सतत रहें कि मेरे पास जो कुछ है वह मैं दूसरों को पहुँचाऊँ। जो अपना बाँटता है उसे सहज मे ही दूसरों से बहुत कुछ मिल जाता है। कोई धन ही बांटने की बात नही है देने के लिए एक मुस्कराहट भी दी जा सकती है। कहा भी है समय, समझ, सामग्री और सामर्थ्य को दूसरों के हित में लगा दो। सृष्टि का एक सनातन नियम है जो दिया जाता है वहीं लौटता है। एक अंग्रेजी कहावत है-

Give and Spend and God will send. अर्थात् जितना बाँटोगे और खर्च करोगे उतना ही प्रभु देगा।

आज तक हमारी जीवन शैली ऐसी रही है कि अपना कुछ देना नहीं और दूसरो से सतत लेते रहना। काम करना

नहीं और वेतन लेना है। माल कम देना और मुनाफा ज्यादा लेना है। सेवा कम करनी है किन्तु कुर्सी पर जरुर बैठे रहना है। इसलिए हमारे जीवन में चिंता, क्लेश, दुःख और द्वन्द्व का साम्राज्य बढ़ता जा रहा है।

संसार में सब सुख के ग्राहक बनते हैं पर सुख देनेवाला कोई नहीं है। वस्तुतः सुख और सम्मान लेने की चीज नहीं है, देने की चीज है। जो तुम दे सकते हो वह अगर ईमानदारी से देने लग जाओ तब जो पाना है वह पाया जा सकता है। जीवन में जिसने बांटा उसीने पाया और जिसने संभाला उसने गंवाया।

एक बार तालाब और नदी के बीच मधुर संवाद हुआ। तालाब से सरिता ने कहा- "तुझे सागर क्या देता है ? कभी सोचा है वह तेरा मीठा जल लेकर तुझे भी खारा बना देता है। जरा सोच, अपना जल अपने पास रख... काम आयेगा।"

सरिता ने कहा- "मैं कल की चिंता नहीं करती। जीवन तो बहती धारा है, मुझे बहने दो।"

तालाब ने खूब समझाया पर सरिता नहीं मानी। तालाब ने तो अपना पानी संग्रह करके रखा। थोड़े दिनों के बाद तालाब का संग्रहित पानी गंदा हो गया, उसमें शैवाल उत्पन्न हो गए, मच्छर बढ गए और लोग मलेरिया से त्रस्त हो गये। नगर पंचायत ने मिलकर उस तालाब को मिट्टी से भर दिया। बहती हुई सरिता तो सागर में मिलकर सागर बन गई थी। उसी सागर से जल उठा, बाष्प बना, वर्षा हुई और फिर सरिता उसी तरह बहने लगी। वास्तव में देखा जाय तो संग्रह मे नहीं त्याग में बडप्पन है। भारतीय संस्कृति की नींव में

त्याग प्रधान है। मनुष्यों में भी पुण्यवान् वहीं माने जाते हैं जो देने के भाव से परिपूर्ण होते हैं।

स्मरण रहें कि जब देना ही है तो शत्रु हो या मित्र, सज्जन हो या दुर्जनं सभी को दो। उसमें भेद मत रखो। हम सब कुछ भी दे डाले तब भी हमारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। बाहर की दुनिया से हम जितना मर्जी ले लें लेकिन हमारा शरीर इतना तुच्छ है कि उसके पास कुछ भी नहीं रह सकेगा यह बिलकुल सनातन सत्य है।

प्रत्येक व्यक्ति के पास देने के लिए तनबल, मनबल, बुद्धिबल और वाणीबल है। उसे परहित में खर्च करने की हमारी पूर्ण स्वतंत्रता भी है। यदि मन के द्वारा हम दूसरों की भलाई का चिंतन करते हैं तो लोग भी हमारी भलाई का चिंतन किये बिना नहीं रहेंगे। अंततः चिंता को फिर स्थान ही कहाँ मिलेगा ? कहा भी है–

जो कुछ समेट रहे हो वह तो एक सपना है।
जो कुछ लुटा रहे हो, वह केवल अपना है।।

महान् संत तालमुद के जीवन की एक विशेषता यह थी कि वे सदैव आनदित रहते थे। उनकी इस विशेषता से प्रभावित होकर लोग भी आनंद प्राप्ति की विधि जानने हेतु उनके पास पहुँचते थे। एक दिन एक अमीर आदमी जो अपने जीवन से बड़ा दु:खी था; वह संत के चरणों में पहुँचा। उस समय संत तालमुद एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए चिडियों को दाना चुगा रहे थे। संत के चरणों में झुकते हुए उस अमीर आदमी ने कहा- "महात्मन् ! मैं बहुत चिंतित एवं व्याकुल रहता हूँ। अपनी जीवन बगिया मे जब-जब भी आनंद के

फूलों को खिलाने की चेष्टा करता हूँ तो विषाद के काँटे ही हाथ लगते हैं। आज मैं आपसे निश्चिन्त जीवन जीने की विधि जानने आया हूँ।"

संत तालमुद ने हँसते हुए कहा- "वत्स ! जो अपने पास है उसे दूसरों को देना सीखो; जो आनंद देने में है वह लेने में नहीं है। जितना बाँटोगे उतना आनंद घना होता जायेगा। तुम्हारे पास जीने के तमाम साधन है, उन्हें बाँटना शुरु कर दो।" यह सुनकर उसे भी निश्चिन्त रुप से जीवन जीने का सूत्र मिल गया। अर्जन में चिंता है विसर्जन में आनंद है इस विधि को उसने हृदयंगम कर लिया।

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मानसिक शक्ति को मंगल-कामना और शुभ आशीर्वाद में लगाना चाहिए। वाणी के द्वारा मधुर शब्दों से अपराधी के अपराध को क्षमा करना और बुद्धि की शक्ति को सही मार्ग दर्शन देने में लगाना है। काया के द्वारा अभयदान एवं परोपकार करते रहना है। जब देने के लिए हमारे पास इतना कुछ है तो बॉटने मे कंजुसी क्यों करें ? प्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह दिनकर ने कहा-

दान जगत का प्रकृत धर्म है
फिर क्यों मनुज व्यर्थ डरता है ।
एक रोज तो हमें स्वयं ही
सब कुछ देना पड़ता है ।।

9 प्रशंसा और निंदा का रोग

न था कुछ तो खुदा था
कुछ न होता तो खुदा होता
डूबोया मुझको होने ने
न होता मैं तो क्या होता

प्रवचनांश

- प्रायः आदमी को दूसरों की प्रशंसा जितनी बुरी लगती है, अपनी प्रशंसा उतनी ही अच्छी लगती है और अपनी निंदा सुनना जितना बुरा लगता है, दूसरों की निंदा करना या सुनना उतना ही अच्छा लगता है।
- आत्मप्रशंसा की चाह ऐसी है जैसे किसी ने गुब्बारे में हवा भर दी हो।
- मनुष्य का मन Blotting Paper जैसा है जिसमें दूसरे का मामूली दोष भी बड़ा हो जाता है।
- दूसरों के जीवन में गुणों को खोजें तथा स्वयं के जीवन में से दोषों को खोजें।

9 प्रशंसा और निंदा का रोग

प्रत्येक मनुष्य की यह अभिलाषा रहती है कि सभी मेरी प्रशंसा करे और मेरा सम्मान करे। एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी प्रशंसा और दूसरों की निंदा करने में गहरा रस होता है। प्रायः आदमी को दूसरों की प्रशंसा जितनी बुरी लगती है, अपनी प्रशंसा उतनी ही अच्छी लगती है और अपनी निंदा सुनना जितना बुरा लगता है, दूसरों की निंदा करना या सुनना उतना ही अच्छा लगता है। इसी मानवीय-वृत्ति की पुष्टि करनेवाला संस्कृत का एक श्लोक है-

स्व-श्लाघा परनिन्दा च कर्त्ता लोकः पदे पदे ।
पर श्लाघा स्वनिन्दा च कर्त्ता कोऽपि न विद्यते ।।

अर्थात् अपनी प्रशंसा और दूसरों की निंदा करनेवाले व्यक्ति तो आपको कदम-कदम पर मिल जायेंगें लेकिन अपनी निंदा और दूसरों की प्रशंसा करनेवाले कहीं भी नहीं मिलते।

कभी-कभी तो व्यक्ति का पूरा जीवन व्यतीत हो जाता है परंतु वह निंदा और प्रशंसा के इस भ्रम से बाहर नहीं निकल पाता। यह भ्रम ही ऐसा है जैसे कोई स्वप्न को ही जागृत जीवन समझता रहे और जागृत जीवन को स्वप्न। साधारण काच के टुकड़ों को बहुमूल्य हीरे समझने का भ्रम वस्तुतः भ्रम ही है और अंततः उसे टूटना ही होता है।

प्रशसा शब्द वैसे विधेयात्मक दृष्टिकोण लिये हुए है

किन्तु जब इस के साथ खुदगर्जी या अहंकार जुड़ जाता है तब वह झूठी प्रशंसा एक रोग के रुप में बढ़ती चली जाती है। इसलिए वर्तमान संदर्भ में मनुष्य प्रशंसा के प्रवाह में बहता चला जा रहा है।

अपनी महत्ता चतुर्दिक प्रसृत हो इसके लिए व्यक्ति कई तरीके अपनाता है। उनमें से एक तरीका यह भी है कि मनुष्य दूसरों से अपनी प्रशंसा कराने के लिए सामने वाले व्यक्ति की प्रशंसा करता है। चाहे उस व्यक्ति में प्रशंसा के योग्य गुण हो या न हो। हँलाकि आंशिक रुप में भी वे गुण सामनेवाले व्यक्ति में विद्यमान नहीं है फिर भी उन गुणों को बढ़ा-चढा कर बखान किया जाता है। इसके पीछे अधिकांशतः यही भावना काम करती है कि वह व्यक्ति उसकी भी अन्य लोगों के सामने भरपूर प्रशंसा करें।

कहते हैं एक बार किसी ऊँट के विवाह-प्रसंग पर गधों को निमंत्रित किया गया तो उचित प्रसंगानुसार गधो ने गीतों की स्वर-लहरियों में गाना प्रारंभ कर दिया। यह देखकर ऊँटों ने मिलकर कहा 'अहो ध्वनि अहो ध्वनि' अर्थात् आप लोगों की आवाज ने तो जादू कर दिया, ऐसी आवाज तो हमने आज तक कभी नहीं सुनी। गधों ने पहली बार जिंदगी में अपनी आवाज की ऐसी प्रशंसा सुनी तो उन्हें बड़ा आश्चर्य और हर्ष हुआ। सारे गधों ने मिलकर ऊँटों को कहना प्रारभ किया 'अहो रुपं अहो रुपं' अर्थात् जैसा रुप भगवान ने आपको दिया है वैसा किसी को नहीं दिया। इस प्रकार

निराधार झूठी प्रशंसा करके दोनो एक-दूसरों को प्रसन्न कर रहे थे।

अपनी महत्ता को बढाने वाला दूसरा आश्चर्यजनक तरीका यह भी है कि जो बाह्य धरातल पर तो स्व-निंदा के रुप में परिलक्षित होता है किन्तु अंतर्मन में अपनी प्रशंसा की महान् बुभुक्षा संजोकर रखता है। अनेक व्यक्ति ऐसे भी देखे जाते हैं जो बाह्य रुप में शब्दों द्वारा अपनी निंदा करते रहते हैं कि हम में यह गुण नहीं है, हम तो गुणहीन हैं, गुणवान् तो आप ही है इत्यादि बातों को बताकर वे श्रोताओं से यह चाहते हैं कि वे अब उसकी भी प्रशंसा करें कि आप तो महान् है, त्यागी हैं, गुणवान् है, बुद्धिमान् है, बलवान् है, शक्ति एवं ऐश्वर्य संपन्न है इत्यादि। जैसे धनी व्यक्ति प्रायः यही कहेगा कि हमारे पास कहाँ धन है, धन-संपत्ति तो आपके पास है।

इस तरह प्रशंसा पाने के लिये मानव विविध विधियों को अपनाता है। पूँजीपति अधिक धन-संचय या दान देकर प्रशंसा पाना चाहते है तो योगी-जन तप और साधना का विपुल प्रदर्शन करके प्रशंसा पाना चाहते हैं येन-केन-प्रकारेण मानव अपनी अहंवृत्ति का पोषण करने के लिए किसी भी भौतिक वस्तुओं से या दिव्य चमत्कारों के माध्यम से प्रशंसनीय बनने की चाहत रखता है ताकि वह हर समय News में उभरता रहे।

कहते हैं कि आत्मप्रशंसा की चाह ऐसी है जैसे किसी

ने गुब्बारे में हवा भर दी हो। जब तक दूसरों के द्वारा कथित प्रशंसनीय शब्दों की हवा उसे मिलती रहेगी तब तक वह अपने को श्रेष्ठ मानता रहेगा। यह सत्य है कि प्रशंसा में जब तक झूठ नहीं मिलेगा तब तक वह दूसरों के मन को छू नहीं सकती। ऐसी झूठी प्रशंसा चापलूसी कहलाती है। किसी के गुण को जाहिर करना या उसके गुणों को उजागर करने के लिए अथवा उसे प्रोत्साहित करने के लिये जो शब्द कहे जाते हैं वे यदि झूठ नहीं है तो वह यथार्थ धरातल की प्रशंसा है किन्तु अक्सर आज देखा जाता है कि लोग अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए दूसरों की झूठी प्रशंसा करते हैं जो चापलूसी बनकर व्यक्ति के अहंकार का पोषण करती है। प्रशंसा करनेवाले को भी भलीभाँति यह राज पता होता है कि मुझे झूठे गुणगान ही करने है तभी सामनेवाला खुश होगा।

मनुष्य अपूर्ण है और जो अपूर्ण होता है वह हमेशा दूसरों के दोष देखने में उत्सुक होता है। अपूर्णता का खास लक्षण है दूसरे को अपने से छोटा दिखाना। यही कारण है कि मनुष्य को निंदा की प्रवृति मे गहरा रस है। मनोविज्ञान का नियम है कि जो खोजोगे वही मिलेगा। इस विश्व में अच्छे और बुरे दोनों तत्व जुडे रहते हैं किन्तु मानव मन की यह आदत बन गई है कि वह दूसरों की बुराई को देखता है और बुराई को ही फैलाता है।

मनुष्य मन Blotting Paper जैसा है जिसमें दूसरे का

मामूली दोष भी बड़ा हो जाता है। कुछ लोगों को इस प्रवृत्ति में इतना मजा आता है कि वे दूसरों की निंदा में घंटों बिता देते हैं। इस तरह वे अपनी जीवन ऊर्जा को व्यर्थ में ही नष्ट कर डालते हैं। हम जब भी किसी की निंदा करते हैं तो वास्तव में अपने लिए दुश्मन तैयार करते हैं। ऐसे दुश्मन जो दिन-रात हमारा बुरा करने की तरकीबें सोचते और अजमाते रहते हैं जिसकी निंदा की जाती है उसका कुछ बिगडे या न बिगड़े किन्तु निंदक का बहुत कुछ उसी समय बिगड जाता है। इसलिए ज्ञातपुत्र भगवान महावीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा- **पिट्ठिमंसं न खाइज्जा** अर्थात् पीठ के पीछे निंदा चुगली मत करो क्योंकि यह काम पीठ का मांस खाने जैसा है।

एक अरबी लघुकथा है। किसी पशुप्रेमी चित्रकार ने एक घोडे का सुंदर चित्र बनाया। चित्र वास्तव में बहुत ही आकर्षक और सजीव बना था। उस चित्र को उसने अरबी ऊँट के सामने रखा और पूछा "बताओ ! यह चित्र तुम्हें कैसा लगा ?"

ऊँट ने अपनी टेढ़ी गर्दन हिलाकर कहा- "आपका चित्र सुंदर तो है पर इसमें यदि मेरी जैसी कूबड़ और निकल आती तो फिर क्या कहना... फिर इसका सौंदर्य अलौकिक हो जाता।" यह सुनकर चित्रकार ने सोचा यह तो स्वयं को ही सुंदर मान रहा है अतः यह दोष निकालना ही जानता है।

अब चित्रकार ने अपने प्यारे गधे के सामने यह चित्र रखकर पूछा-"कहो ! तुम्हें यह चित्र कैसा लगा ?"

गधे ने अपने लंबे कान खडे करते हुए कहा- "ओ हो ! इतना बड़ा और इतना सुन्दर जानवर ! लेकिन कान इतने छोटे ? इसके कान यदि मेरी तरह बड़े होते तो यह भी बड़ा खूबसूरत लगता।"

मनुष्य भी दूसरों के दोषों को देखने के लिए सहस्त्राक्ष बन जाता है किन्तु दुःख तो इस बात का है कि वह अपने दोष देखने के लिए एकाक्ष भी नहीं रहता। जैसे गुणदर्शी तथा गुणान्वेषक होना एक सद्‌वृत्ति है वैसे ही दोषदर्शी व दोषान्वेषक होना भी एक सद्‌वृत्ति है। परन्तु ये दोनों सद्‌वृत्तियाँ तभी तक सद्‌वृत्तियों के रुप में रहती है जब तक हम दूसरों के गुणों को देखें तथा स्वयं के दोषों को देखें। दूसरों के जीवन में गुणों को खोजें तथा स्वयं के जीवन में से दोषों को खोजें। संत कबीर ने आत्म निरीक्षण करने के बाद जो सत्य उन्हें उपलब्ध हुआ उसे एक दोहे में लिखा है-

बुरा बुरा सबको कहे बुरा न दीसे कोय ।
जो घट शोधूं आपणो तो मुझ से बुरा न कोय ।।

10 दिव्य दृष्टि

संघर्ष गति का होता है सीढ़ियों का नहीं
संघर्ष दृष्टि का होता है पीढ़ियों का नहीं
गति बदल जाय सीढ़ियाँ बदलने की जरुरत नहीं
दृष्टि बदल जाय पीढ़ियाँ बदलने की जरुरत नहीं

प्रवचनांश

- क्या हम इस छोटी सी जिंदगी में समझदारी और सहिष्णुता के फूलों को खिलाकर नहीं जी सकते?
- इस संसार मे प्रत्येक व्यक्ति इतना पुण्यशाली नही होता कि उसे उचित समय पर सब कुछ मनचाहा मिल जाय।
- प्रतिकूल परिस्थितियों में संतुलित रहने के लिए उन स्थितियों को विधेयात्मक दृष्टिकोण से समझना अनिवार्य है।
- समस्त उलझनों का सहर्ष स्वीकार करे क्योंकि जो वास्तविकता है उसका तिरस्कार किया जाय तो वे दुगुनी हो जाती है।
- हर व्यक्ति मे गुण भी है और दोष भी है, सभी परिस्थितियॉं तबदील होती ही रहती है। ऐसे मे सहनशीलता से सब कुछ स्वीकार करें।

10 दिव्य दृष्टि

यह जिंदगी बहुत छोटी सी है, न जाने कब ये चंद सांसों का सफर मुकाम पर पहुँचने से पहले ही खत्म हो जाय फिर क्या तो किसीसे दुश्मनी रखना और क्यों मनमुटाव व गलतफहमियों में जीना? क्या हम इस छोटी सी जिन्दगी में समझदारी और सहिष्णुता के फूलों को खिलाकर नहीं जी सकते?

जीवन जीने की अनुपम दिव्य दृष्टि है- सहिष्णुता। चाहे घटना प्रिय हो या अप्रिय, परिस्थिति अनुकूल हो या प्रतिकूल, जीवन में चाहे लाभ हो या हानि, सत्कार मिले या तिरस्कार, निंदा हो या प्रशंसा; किसी भी स्थिति में व्याकुल न होकर उसका सहजता से स्वीकार करना ही सहिष्णुता है। जहाँ सहिष्णुता हो वहाँ शिकायत नहीं होती और ना ही कोई रुदन-विलाप। गृहस्थ हो या सन्यासी सभी के लिए ऐसी जीने की दिव्य दृष्टि होना अनिवार्य है। जिसके पास यह दृष्टि नहीं होती वे घोर संताप और अशांति का अनुभव करते हुए जीवन जीते हैं।

इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति इतना पुण्यशाली नहीं होता कि उसे उचित समय पर सब कुछ मनचाहा मिल जाय। यूँ भी इस संसार के समस्त पदार्थ और व्यक्ति अस्थिर और विनाशी हैं। ऐसे परिवर्तनशील संसार में स्थिर और अविनाशी तो एकमात्र आत्मा ही है। उस आत्मा की सुरक्षा कर लेना, आत्मा को पापों से बचा लेना और आत्मा में सुसंस्कारो के बीज बो देना तभी संभव है जब जीने की दिव्य दृष्टि को

जीवन में पिरोया जाय।

प्रतिकूल परिस्थितियों में संतुलित रहने के लिए उन **स्थितियों को विधेयात्मक दृष्टिकोण से समझना अनिवार्य है।** *एक सत्य घटना* **1914** *की है। विश्वविख्यात अमेरिकन* **वैज्ञानिक एडिसन** *के जीवन-काल का प्रसंग है। एक* **बार** *रात्रि में उनके प्रयोगशाला में आग लग गई। अग्नि के तीव्र* **प्रकोप से सुबह** तक तो न मालूम कितनी ही मूल्यवान चीजें जल कर राख हो गई थी। अनेक जरुरी कागजातों के साथ लगभग बीस लाख डॉलर की कीमती पुस्तकें जलकर स्वाहा हो चुकी थी। इतना सब नुकसान होने के बावजूद भी सबसे अधिक दुख की बात तो यह थी कि एडिसन की तीस वर्ष पुरानी एक महत्वपूर्ण डायरी जल गई थी। जिस डायरी में एडिसन ने अपने समस्त आविष्कारों से संबंधित रहस्यों की सूक्ष्म जानकारी लिखी हुई थी।

प्रातः जब एडिसन प्रयोगशाला के अग्निकांड को देखने के लिए पहुँचे तो बड़ी धैर्यता के साथ जली हुई सारी चीजों को गौर से देखने लगे। उनका बेटा यह सब देखकर उदास हो गया और एक कोने में जाकर बैठ गया। बेटे को इस प्रकार निराश होते हुए देखकर एडिसन ने पूछा- "बेटा! तुम्हारी मॉं कहाँ है ? उन्हें भी शीघ्र बुला लाओ क्योंकि ऐसा दृश्य उसे जीवन में दोबारा देखने को नहीं मिलेगा।"

दूसरे दिन एडिसन जीवन की सारी आशाओं व सपनों की राख के बीच प्रयोगशाला में घूम रहे थे। तब उन्होंने अपनी पत्नी और बेटे को घटित दुर्घटना का विधेयात्मक दृष्टिकोण बताते हुए कहा- "याद रहें, जीवन के नुकसान

में भी कुछ फायदा रहा हुआ होता है। हमारा सब कुछ जल गया और इसमें हमारी गलतियाँ और भूलें भी जलकर राख हो गई हैं। ईश्वर को धन्यवाद दो कि अब हम नये सिरे से काम कर सकेंगें जिसमें कोई पुरानी भूलें दोहराई नहीं जायेगी। इसके लिए हम अधिक सजग रहेंगे। ऐसा विधेयात्मक दृष्टिकोण स्वीकारने की क्षमता बढ़ाता है और यह स्वीकार भाव ही जीने की ऐसी दिव्य दृष्टि है जो अंधकार युक्त पथ को उजाला दे सकती है।

जब तक इस शरीर में सांस है तब तक जीवन में छोटी-बड़ी अनेक उलझनें हो सकती है। उन समस्त उलझनों का सहर्ष स्वीकार करें क्योंकि जो वास्तविकता है उसका तिरस्कार किया जाय तो वे दुगुनी हो जाती है। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति या व्यक्ति द्वारा मिलनेवाली प्रतिकूलता को सहना ही पड़ता है, चाहे-अनचाहे, मजबूरी से या मन से, भय या प्रलोभन से किसी न किसीका कुछ न कुछ सहना ही होता है। कारण यह है कि इस संसार में चाहत के अनुसार कुछ नहीं होता और जो कुछ मिलता है वह यहाँ टिक नहीं सकता। इसलिए दुनिया में सहिष्णुता से जीने का ढंग बताते हुए उज्जैन के एक कवि हेमंत श्रीमाल ने लिखा है-

छोटी-छोटी बातों में क्या रखा है पगले ।
यह जीवन है समझौता भी करना पड़ता है ।।

जीवन के अनेक पडावों को पार करते हुए प्रत्येक व्यक्ति को समझौतावादी बनने मे ही सार है वर्ना कब तक संघर्ष करते रहोगे?

एक सुबह संत कबीर के द्वार पर एक व्यक्ति पहुँचा।

वह व्यक्ति बड़ा दुःखी और तनावग्रस्त था। उसने अपनी पीड़ा जाहिर करते हुए कहा-कबीर जी! मैं तो बहुत दुखी हो गया, मेरी पत्नी मेरा कहना नहीं मानती। हम दोनों का आपस में सदा क्लेश किसी न किसी बात पर बना रहता है इससे घर का वातावरण बड़ा अशांत रहता है। कोई ऐसा शाति-मंत्र मुझे दीजिए जिससे घर में शांति हो जाय।"

यह सुनकर कबीरजी ने अपनी पत्नी से कहा-"देवी! दीपक ले आना मुझे सुत कातना है।" आदेश पाते ही पत्नी ने दीपक लाकर रखा तो आगन्तुक को बडा आश्चर्य हुआ कि सूरज की रोशनी मे दीपक की जरुरत ही नहीं है फिर भी ऐसा आदेश देना कहाॅ तक उचित है? और पत्नी भी कैसी पागल है कि कहने मात्र से चुपचाप दीपक जलाकर रख दिया।

थोडी ही देर में कबीर जी की पत्नी दूध के दो ग्लास रख गई। कबीर जी ने एक ग्लास मेहमान को दिया और दूसरा स्वयं पीने लगे। कुछ ही क्षणों में कबीर जी तो वह दूध पी गए पर उस मेहमान ने अभी तक एक घूॅट ही पिया था। इतने में कबीर की पत्नी ने रसोई-घर से पूछा-"दूध में मीठा तो ठीक है न? शायद मैं भूल तो नहीं गई हूँ?

तब कबीर जी ने उत्तर दिया-"नहीं, देवी ! दूध में पूरा मीठा है।" हाँलाकि सच्चाई यह थी कि वह दूध में मीठा डालना ही भूल गई थी। यह सब सुनकर वह दंग रह गया कि यह कैसी अटपटी बाते इस परिवार मे चल रही है।

जब उसने अपने प्रश्न का उत्तर मांगा तो कबीर जी ने शब्दात्मक उत्तर न देकर क्रियात्मक रुप से उत्तर दिया।

उसके दूधवाले ग्लास में एक चुटकी भर राख डाली और कहा इसे पी लो तो तुम्हें तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा। वह तुरंत ही पी गया। कबीर जी ने पूछा-"भैया! दूध के स्वाद में कुछ अंतर आया?

वह बोला- "नहीं, कोई खास फर्क नहीं लगा। ऐसा दूध फिर भी पिया जा सकता है।"

तब हँसते हुए कबीर जी ने कहा- "जीवन में जो भी प्रतिकूलता है वह मात्र चुटकी भर राख जितनी है और यह अमूल्य जीवन तो दूध से भरा हुआ प्याला है।"

महावीर-वाणी कहती है **पियमप्पियं सव्व तितिक्खएज्जा** अर्थात प्रिय-अप्रिय सभी बातों को स्वीकार करना सीखें। हर व्यक्ति में गुण भी है और दोष भी है, सभी परिस्थितियाँ तबदील होती ही रहती हैं। ऐसे में सहनशीलता से दुख को स्वीकार कर लेना चाहिए ताकि व्यर्थ के संघर्षों से, समस्याओं से एव विषमताओ से बचा जा सके।

11 भय क्यों ?

कूद पड़ दरिया में,
क्या तूफां का डर किश्ती की फिक्र
है अगर तुझको यकीं,
फज्ले खुदा हो जायेगा

प्रवचनांश

- मनुष्य मात्र की पीड़ा को देखते हुए मन में विचार आता है कि जब आत्मा का मौलिक स्वरुप निर्भयता है तो फिर मनुष्य भयभीत क्यों है ?
- प्रत्येक मनुष्य अपने भय की रचना स्वयं करता है और ऐसी स्थिति मे एक भय दूसरे भय को निमंत्रण देता है।
- जितना हम भयभीत होते हैं उतना हम संकट के प्रतिरोध की शक्ति को दुर्बल बनाते हैं।
- जब भी मन में भय की तरंग पैदा हो उसी समय अभय की तरंग को जमा लो तो भय की तरंग वहीं समाप्त हो जायेगी।

11 भय क्यों ?

मनुष्य के पास अनेक शक्तियाँ होते हुए भी वह आज तनाव और कुंठा से ग्रस्त हैं। उसकी निराशा और हताशा का एकमात्र कारण है- 'भय'। प्रायः मानव किसी न किसी प्रकार के भय से संत्रस्त रहता है। मनुष्य मात्र की इस पीड़ा को देखते हुए मन में विचार आता है कि जब आत्मा का मौलिक स्वरुप निर्भयता है तो फिर मनुष्य भयभीत क्यों है?

इस प्रश्न का समाधान खोजने के लिए जैसे ही मन यथार्थता की ओर गति करता है, वैसे ही वस्तु-स्थिति स्पष्ट होती चली जाती है। सच यह है कि किसी भी प्राणी या मानव को आत्म-सापेक्ष होने पर कोई भय नहीं रहता क्योंकि आत्मा तो अजर-अमर है। उसका त्रिकाल में भी विनाश नहीं होता। गीता में भी कहा है-

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः

अर्थात् आत्मा का न तो शस्त्रों से छेदन हो सकता है और न अग्नि उसे जला सकती है। अतः आत्म-विधान की दृष्टि से प्राणी को किसी भी प्रकार का भय नहीं हो सकता परन्तु आत्मा कर्मों से बंधी होने के कारण शरीर से भी आबद्ध रहती है। फलस्वरुप वह भौतिक तत्वों से भी जकड़ जाती है। इसी जकडन में आत्मा अपना मौलिक स्परुप भूलकर वैभाविक तत्वों को अपना लेती है। इन तत्वों के संरक्षण व संवर्धनादि कार्यों में अपनी बहुमूल्य शक्ति को व्यर्थ कर देती है। इन वैभाविक तत्वों के साथ अभिन्नता रखने के

कारण ही मनुष्य में भय की उत्पत्ति होती है।

भय सचमुच एक ऐसा अंधेरा है जहाँ केवल नकारात्मक भावनाएँ जन्मती हैं, पलती हैं और पनपती हैं। यदि इस भय की अंधियारी गली में एक बार प्रवेश कर लिया तो फिर उसका छोर जल्दी से हाथ में नहीं आ सकता। यह सत्य है कि प्रत्येक मनुष्य अपने भय की रचना स्वयं करता है और ऐसी स्थिति में एक भय दूसरे भय को निमंत्रण देता है।

एक व्यक्ति को बहुत डर लगता था। डर के कारण उसके जीवन में न दिन का चैन था और न रात का आराम। खाना-पीना, सोना-घूमना आदि समस्त दैनिक क्रियाओं को करने में वह असमर्थ हो गया। आखिर वह एक फकीर के पास पहुँचा। फकीर ने उसकी समस्या को जानकर उससे प्रश्न किया कि तुम्हें किस बात का डर लगता है? तब उसने कहा-"मुझे एक काली छाया निरन्तर दिखाई देती है। सोते-जागते, चलते-फिरते वह काली छाया हर क्षण मेरे सामने खडी रहती है। उससे मझे बहुत डर लगता है।"

फकीर ने उसे एक ताबीज देते हुए कहा-इसे तुम अपनी दांई भुजा पर बाँध लेना। इसके प्रभाव से तुम्हारा भय समाप्त हो जायेगा।" घर आकर उसने ताबीज बांध लिया तो सचमुच उसका डर भाग गया और वह काली छाया भी लुप्त हो गई।

दो महिने के बाद वह आदमी पुनः उस फकीर के चरणों में पहुॅचा। फकीर ने पूछा- "भाई ! अब तो तुम्हारा डर समाप्त हो गया होगा?"

उसने कहा- "जी हाँ ! वह काली छाया वाला डर तो मिट गया किन्तु अब एक और नया डर मेरा पीछा कर रहा है। अब मुझे दिन-रात यही डर रहता है कि कहीं मेरा ताबीज खो न जाय। इसी डर के कारण मैं प्रतिक्षण भयभीत रहता हूँ।" आज के मनुष्य की हालत भी ठीक ऐसी ही है। एक भय समाप्त होता है तो दूसरा पैदा हो जाता है।

भय एक ऐसा संकट है जिसका आक्रमण होने पर आदमी स्वयं अपनी दृष्टि में असमर्थ और प्रभावहीन हो जाता है। भय के कारण उसकी बुद्धि कुंठित हो जाती है तथा गति में स्तब्धता आ जाती है। भय ऐसा संक्रामक रोग है जो एक के बाद दूसरे सारे प्रयत्नों को असफल बना देता है। प्रारंभ में भय बहुत छोटा होता है किन्तु शीघ्र ही एक व्यापक और प्रबल रुप को धारण कर लेता है।

खलील जिब्रान ने भी कहा है- **तुम दरवाजों में से गुजर सको इसके लिए अपने पंख समेटो मत...तुम कहीं छत से टकरा न जाओ इसके लिए अपने सरों को झुकाओ मत...दीवारें दरककर गिर न पड़े इसके लिए तुम सांस लेने से डरो मत...।**

भय से कार्य करने की लगन नष्ट हो जाती है, जीवन का आनंद फीका हो जाता है और आयु के कुछ वर्ष कम हो जाते है। भयभीत व्यक्ति इस आशंका से सदा त्रस्त रहता है कि अब क्या होगा ? यूँ हमें अपना भय ज्ञात नहीं होता किन्तु अवसर आने पर वह भीतर रही हुई भय की बिल्ली शेर बन जाती है। जितना हम भयभीत होते हैं उतना हम

संकट के प्रतिरोध की शक्ति को दुर्बल बनाते हैं।

उपनिषदों में एक कथा आती है। एक बार नचिकेता यमराज के द्वार पर पहुँचा और उसने यमराज से प्रश्न पूछा- "अमर होने का उपाय क्या है?"

यमराज ने कहा- "भय को जीतने से अमरत्व प्राप्त होता है।" भय का नाम ही मृत्यु है। महाभारत के युद्ध में जूझ मरने को जब अठारह-सौ अक्षौहिणी सेना सजी खडी थी तब प्रधान सेनापति भीष्म पितामह कौरवों को बता रहे थे कि दोनो पक्षों में कौन-कौन योद्धा, महारथी और कौन-कौन रथी है। उन्होने अर्जुन, भीम, कर्ण, दुर्योधन, द्रोण आदि को महारथी और द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को रथी कहा तो सबके आश्चर्य की सीमा न रही।

उन्होंने पूछा- "पितामह! हम तो अश्वत्थामा को महारथियों से भी अधिक पराक्रमी और रणकौशल मे पारगत समझते थे और आपश्री तो उन्हे महारथी भी नहीं समझते?"

पितामह ने कहा- "यही तो बात आज मैं आपके समक्ष बताना चाहता हूँ कि केवल बल और रणकौशल ही महारथी होने के लिए पर्याप्त नहीं है। जो गुण मनुष्य को अजेय बना देता है वह गुण यदि योद्धा मे नहीं हो तो वह जीती बाजी भी हार जाता है। वह गुण अश्वत्थामा में नहीं है। सचमुच भविष्य में रणक्षेत्र से अश्वत्थामा भाग निकला था।

भय के पास अपनी तो कुछ भी शक्ति नहीं है। भय को तो हम अपने पास से शक्ति देते हैं। यह प्रकृति का नियम है कि जिस वस्तु से आप भय खाते हैं उसी को आप

अपनी ओर आकर्षित करते हैं। भय से संदेह पैदा होता है और संदेह से साहस का नाश होता है। जब साहस का नाश हो जायेगा तो किसी भी कार्य में प्रवृत्ति नहीं होगी।

भय से मुक्ति पाने के लिए ज्ञातपुत्र भगवान महावीर ने अभय की अनुप्रेक्षा कही है। अभय की भाव-धारा प्रज्ञा से पैदा होती है और प्रज्ञा कहती है जो प्राप्त है उसे स्वीकार कर लो। ऐसी जब चित्त की दशा हो तो चेहरे पर प्रसन्नता झलकती है। और एक गहरी शांति का अनुभव होता है। हर व्यक्ति अभय की भावधारा को विकसित कर सकता है। जब भी मन में भय की तरंग पैदा हो उसी समय अभय की तरंग को जगा लो तो भय की तरंग वहीं समाप्त हो जायेगी। जब भी मन में कोई बुरा विकल्प उठे तत्काल शुभ भावों की तरंगों को पैदा कर लेना। Quantum Theory का सिद्धांत भी तरंगों के रहस्य को स्पष्ट करता है कि एक तरंग के द्वारा दूसरी तरंग को निरस्त किया जा सकता है। जैसे भय, भय को पैदा करता है वैसे अभय, अभय को पैदा करता है।

12 समाधान का चिराग

ऐसा दीप जलाओ कि कभी बुझे ही नहीं
ऐसा फूल खिलाओ कि कभी मुरझाये ही नहीं
सुलझा लो अपनी चेतना के हर तार को
ऐसा जीवन बना लो कि कभी उलझे ही नहीं

प्रवचनांश

- समस्या और समाधान का तालमेल जरुरी है।
- प्रत्येक व्यक्ति में अनंत शक्ति है और हम शक्ति का नियोजन ठीक रुप से कर लेते है तो समस्या का समाधान हो सकता है।
- उधार समाधान स्थायी समाधान नही होता क्योकि वह रुक-रुक कर पुनः समस्याऍं पैदा करेगा।
- जीवन मे बहुत कुछ है जो दूसरों से नही मिलता उसे स्वयं मे ही खोजना जरुरी है।
- हम स्वय ही समस्या है और स्वय ही समाधान का चिराग हैं।

12 समाधान का चिराग

किसी शायर ने जीवन की सच्चाई और गहराई बताते हुए एक समाधानात्मक संकेत लिखा है-

आँखों में आँसू भी हैं, मुस्कान भी है
धागे में गांठ भी है, संधान भी है ।
हर सिक्के में होते हैं दो पहलु
जीवन में समस्या भी है तो समाधान भी है ।।

इस संसार में जीनेवाले प्रत्येक मनुष्य को अपनी हर समस्या का समाधान मिल सकता है किन्तु उसे समाधान वहीं खोजना चाहिए जहॉ समस्या पैदा हुई हो। शरीर में किसी एक जगह दर्द हो गया और उसको ठीक करने के लिए दवाई यदि कहीं दूसरी जगह पर लगा दी तो दर्द ठीक नहीं होगा बल्कि दूसरी जगह दर्द पैदा हो जायेगा।

हमारा समाधान ऐसा न हो कि रोग कहीं और चिकित्सा कही; भूख कही और भोजन कही, चाह कही और राह कही। ख्याल रहे, समस्या और समाधान का तालमेल जरुरी है। मानव-मन की कुछ विकृतियॉ एव विसगतियॉ ऐसी हैं जो सोचने में और होने में अंतर कर देती है।

हमारे ऋषि-मुनि गण कहते है-प्रत्येक व्यक्ति मे अनंत शक्ति है यदि हम शक्ति का नियोजन ठीक रुप से कर लेते हैं तो समस्याओ का समाधान हो सकता है। जैसे हीरे की खोज में निकला हुआ आदमी कोयले की कालिख देखकर यदि हाथ काले हो जाने के डर से रुक जाता है तो वह

हीरों को नहीं पा सकेगा। पानी की खोज में जमीन को खोदता हुआ,आदमी पत्थरों को देखकर खोदना छोड़ दें या निराश होकर बैठ जाय तो जल को नहीं पा सकेगा। इसी प्रकार समाधान की खोज में निकला आदमी समस्याओं को देखकर घबरा जाय तो उसके समाधान का चिराग कभी जल नहीं सकेगा।

जब-जब जीवन में समस्या पैदा हो तब-तब समाधान ढूँढ़ने के लिए दूसरे की तरफ मत भागो, अपने ही भीतर का उत्तर खोजो तभी समाधान जीवंत रुप से मिलेगा। समस्या कभी दूसरो के द्वारा निर्मित नही होती वह सदा स्वनिर्मित ही है। जैसे मकडी दूसरे जीवों को उलझाने के लिए पहले अपनी ही लार से जाल बुनती है और बाद में उसमें फँस जाती है। ठीक यही हाल आज के मनुष्य का है। समस्या हमारी हैं और समाधान दूसरे के हों तो इनका कभी तालमेल नहीं बैठ सकता। उधार समाधान स्थायी समाधान नही होता क्योकि वह रुक-रुक कर पुन समस्याएँ पैदा करेगा।

कभी ख्याल किया होगा कि किसी दूसरे व्यक्ति के जूते अपने पावो मे या तो छोटे पडेगे या बडे हो जायेगे या काटेगे। किसी भी तरह से मेल नहीं खा सकते भले ही जूते का नबर एक ही हो किन्तु पैर तो अलग-अलग होते है और चलने का ढग भी सबका अपना-अपना होता है। इसलिए किसी विद्वान् ने कहा है-न दूसरे की टोपी पहनी जा सकती है ना ही जूते। जीवन मे बहुत कुछ है जो दूसरों से नही मिलता उसे स्वय मे ही खोजना जरुरी है। जो भी जीवन मे श्रेष्ठ है, सत्य है, सुन्दर है उसे दूसरो से मागने

का कोई उपाय नहीं है। शांति या समाधान लेने-देने की चीज नहीं है।

किसी नगर में एक सेठ रहता था। उसके पास लाखों की धन-सम्पत्ति थी और रहने के लिए बहुत बड़ी हवेली थी। उसकी पत्नी सुशील स्वभाव की थी एवं उसकी संतान भी सुसंस्कारी थी। इन सारी सुख-सुविधाओं के बीच में रहते हुए भी सेठ का मन व्यग्र, बेचैन और अशांत रहता था।

एक दिन सेठ को किसी ने बताया कि अमुक नगर में एक महात्मा रहता है। वह लोगों को कुछ ऐसे उपाय बताता है कि उन्हें अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त हो जाता है। सेठ दूसरे ही दिन महात्मा के चरणों में पहुँचा और उसने नम्र निवेदन किया- "महात्मन् ! मेरे पास संपत्ति की कमी-नहीं है, मेरा व्यापार बहुत अच्छा चलता है और घर में भी सब तरह से आनंद-मंगल है किन्तु मेरा मन बहुत अशांत रहता है। आप कुछ ऐसा उपाय कर दीजिए कि मेरे भीतर की सारी समस्याएँ शांत हो जाय।"

सेठ मन ही मन सोच रहा था कि महात्मा मुझे कोई ताबीज दे देगे या भस्म दे देंगे या कुछ ऐसा चमत्कार कर देगे जिससे मुझे शांति मिल जायेगी। लेकिन महात्मा ने न कुछ ऐसा दिया न कुछ ऐसा किया सिर्फ इतना ही कहा-"भाई! शाम हो रही है अत आज तुम विश्राम करो और कल सुबह आ जाना।" दूसरे दिन सेठ बडी आशा और उमग के साथ महात्मा के चरणों मे पहुँचा। महात्मा ने सेठ को आदेशात्मक स्वर मे कहा- "वत्स ! आज सारा दिन तुम्हें धूप मे बैठना होगा।" इतना कहकर महात्मा स्वयं कुटिया मे चले गये और

अपनी दिनचर्या मे मस्त हो गए।

गरमी के दिन थे अतः सूर्य की तपती हुई किरणों से सेठ का बुरा हाल हो रहा था। महात्मा के ऐसे व्यवहार से उसे मन ही मन गुस्सा आया किन्तु वह मौन रहा। तीसरे दिन सेठ जब महात्मा के पास पहुँचा तब महात्मा ने आदेश दिया-" वत्स ! आज सारा दिन तुम्हें भूखा रहना होगा।"

सुबह से शाम तक सेठ को अन्न का एक दाना भी नहीं मिला तो उसकी दशा दयनीय हो गई। सेठ ने देखा महात्मा तो बडे आनन्द से भोजन कर रहे हैं। उस रात सेठ को नीद नहीं आई। वह सारी रात करवटें बदलता हुआ सोचता रहा कि महात्मा तो कितने स्वार्थी और क्षुद्र हैं, मैं किस चक्रव्यूह मे फँस गया ? कल सुबह कौन जाने कैसा आदेश मिले, अत. सुबह होते ही घर चला जाऊँगा।

सूरज निकलते ही सेठ ने अपना बिस्तर बांधा और चलने को तैयार हो गया। यह देखकर महात्मा बोले- "सेठ जी! घर क्यों जा रहे हो?"

सेठ ने निराश होकर कहा-"महात्मन् ! मैं तो यहॉ आया था कुछ पाने के लिए किन्तु मेरा समाधान आपके पास भी नही है। जब आप कुछ उपाय नहीं बता सकते तो यहॉ रहना भी व्यर्थ है।"

महात्मा ने मुस्कराकर कहा- "बेटा ! मैने तो तेरी सारी समस्याओ का समाधान कर दिया किन्तु तुम समझ नहीं पाये हो। पहले दिन मैने तुम्हें चिलचिलाती धूप मे बिठाया और मै स्वय छाया मे बैठा रहा। दूसरे दिन मैने तुम्हें भूखा रखा

और स्वयं भोजन किया। इन बातों से मैंने तुम्हें यह समझाने का प्रयास किया कि मेरे छाया में बैठे रहने से तुम्हें छाया नहीं मिल सकती और मेरे भोजन कर लेने से तुम्हारा पेट नहीं भर सकता। इसी प्रकार मेरी साधना से तुम्हें सिद्धि नही मिल सकती। जब समस्याएं तुमने स्वयं पैदा की हैं तो समाधान भी तुम्हें स्वयं से ही मिलेगा।

किसी भी समस्या के निराकरण के लिए समस्या के जडों तक जाने की हमारी हिम्मत नहीं है इसलिए हम समस्याओं को टालते हैं या फिर उधार समाधान खोजते हैं। यदि काई विद्यार्थी गणित के किसी प्रश्न का समाधान चाहता है और विधि से गुजरने से पहले ही वह उत्तर को पुस्तक के पीछे देख लेता है तो ऐसे मे वह उत्तर सही तो लिख देगा पर विधि से अनभिज्ञ रहेगा। ऐसा समाधान मात्र ऊपर-ऊपर से समस्या को मिटा सकता है किन्तु वह जड़ों तक नहीं पहुँच सकेगा। ऐसे में बार-बार समस्याएँ पैदा होती रहेगी।

प्रायः लोग समस्या की जडो को पानी देते हैं और पत्तियों को काटते हैं। जब जड़ को पानी दिया जायेगा और पत्तियों को काटा जायेगा तो परिणाम यह होगा कि पत्तियां और घनी हो जायेगी। कार्य को नही, कारण को मिटाने से समाधान होता है। उन कारणो को तलाशना होगा जहॉ से समस्या पैदा हुई है। हम स्वयं ही समस्या है और स्वय ही समाधान का चिराग है।

13 क्षणभंगुर जीवन

सदा न बागां बुलबुल बोले
सदा न बाग बहारे
सदा न राजे राज करिन्दे
सदा न महफिल यारे

प्रवचनांश

- जीवन का सबसे बडा रहस्य यह है कि जीवन किसी भी क्षण टूटेगा। यद्यपि आत्मा तो अजर-अमर है किन्तु जीवन अमर नहीं है।
- क्षणभंगुरता जीवन की एक ऐसी सच्चाई है जिसे जानकर भी हम नहीं जानते; जिसे समझकर भी हम नही समझते।
- हर उन्नति का पतन होता है, हर संग्रह का अंत मे क्षय होता है; हर संयोग का एक दिन वियोग होता है और हर जीवन का अंत मृत्यु से होता है।
- जीवन का सार इतना ही है कि वस्तुओं की क्षणिकता, जीवन की अनित्यता और मृत्यु की अनिवार्यता का चिंतन करके जीवन को धन्य बनाओ।

13 क्षणभंगुर जीवन

जिन्दगी तो एक CALENDAR की भाँति है जिसमें से प्रतिदिन एक-एक पन्ना निकलता जाता है। किसी शायर ने भी कहा है-

जीवन एक वृक्ष है फानी
बचपन पत्ते शाख जवानी ।
फिर है पतझड़ खुश्क बुढ़ापा
इसके बाद खत्म है कहानी ।।

जिंदगी की कथा मृत्यु की व्यथा पर ही समाप्त होती है; किन्तु मानव मन नाना प्रकार के सपनें, कल्पनायें और विविध आयोजन करता है कि कल मझे यह करना है, परसों यह करना है; एक वर्ष के बाद मैं ऐसा करुँगा, दस वर्ष के बाद मैं वैसा करुँगा परन्तु आँखों के बन्द होते ही यह जीवन-कहानी समाप्त हो जाती है।

नदी में बहने वाले जल के समान जीवन निरन्तर प्रवाहित हो रहा है। एक क्षण के लिए भी बहता हुआ जल रुकना नहीं जानता। आयुष्य भी इसी प्रकार बिना रुके व्यतीत होता जा रहा है। अंजलि में जल भर कर यदि आप खड़े रहें तो कुछ ही समय बाद वह सारा जल समाप्त हो जाता है। जिस प्रकार अंजलि से बाहर एक-एक बूँद निकलती जाती है, वैसे ही हमारे आयुष्य का भी एक-एक क्षण बीतता जाता है।

ज्ञानियों का कथन है कि यह जीवन क्षण भर का सपना है अतः इसका बहुत भरोसा मत करना। इसमें सो मत जाना,

खो मत जाना बल्कि जागृत रहना। जीवन का सबसे बड़ा रहस्य यह है कि जीवन किसी भी क्षण टूटेगा। जैसे पीला पत्ता वृक्ष पर कुछ पलों का है, पानी का बुलबुला और घास *की नोक पर रहा हुआ ओसबिन्दु क्षण भर के लिए जीवित है । ठीक इसी प्रकार यह जीवन भी क्षणिक है। यद्यपि आत्मा तो अजर और अमर है किन्तु जीवन अमर नही है। किसी भी क्षण आत्मा इस शरीर को छोड सकती है क्योंकि जीवन* मृत्यु पर प्रतिष्ठित है।

यह जीवन तो इतना क्षणिक है कि जो अन्न खाया है। वह Digest होगा या नहीं, जो श्वास भीतर ली है वह बाहर निकलेगी या नही इसका भी भरोसा नहीं है। जीवन क्षणभगुर है, इसका अर्थ इतना ही है कि इस क्षण के अतिरिक्त हाथ मे कोई दूसरा क्षण नहीं है। जब एक ही क्षण हमारे पास है तो उसे जी लो। यही क्षण आखिरी क्षण है अतः जीवन के यथार्थ को अच्छी तरह से जान लो, बात को कल पर मत छोडो। क्षणभगुरता, जीवन की एक ऐसी सच्चाई है जिसे जानकर भी हम नही जानते, जिसे समझकर भी हम नहीं समझते।

जिसके अंतर्चक्षु खुल जाते है, उसकी चेतना जागृत हो जाती है। उसे यह समझते देर नही लगती कि जीवन की सच्चाई क्या है। जैन आगमो मे एक कथा प्रचलित है।

थावच्चा-पुत्र नामक एक बालक जो अपनी मॉ के पास बैठा हुआ खेल रहा था। थोडी ही देर मे उसे गीतो की मधुर झकार सुनाई दी। पडौस के घर से आने वाली बाजो की आवाज ने उसे मत्रमुग्ध कर दिया। किस खुशी मे आज यहॉ इतनी धूमधाम हो रही है यह जानने के लिए उसने

माँ से पूछा-" माँ ! पड़ौस के घर में आज इतनी खुशियाँ क्यों मनाईं जा रहीं हैं?"

माँ ने सहज स्वर में उत्तर दिया-" बेटा ! आज उनके घर में एक पुत्र का जन्म हुआ है।" थावच्चा-पुत्र ने यह सुना तो वह मन ही मन सोचने लगा कि इस संसार में पुत्र जन्म की घटना से लोगों को कितनी खुशी होती है अर्थात् जन्म का अवसर कितना अनमोल है जिसे मनाया भी जाता है।

कुछ घंटे थावच्चा-पुत्र के इसी खुशी में बीते कि अचानक उसे करुण क्रन्दन और रुदन की दयनीय आवाज सुनाई दी। जिस महफिल में अभी तक रग जमा हुआ था वहाँ एकदम से सन्नाटा छा गया। एक अज्ञात भय की आशंका से थावच्चा-पुत्र ने माँ से दूसरा प्रश्न किया-" माँ ! अभी तक जहाँ से मधुर स्वर-लहरियाँ सुनाई दे रही थी अब वहाँ यह करुण-विलाप क्यों हो रहा है?"

माँ ने अत्यत उदास स्वर मे कहा-"बेटा! अभी-अभी जिस पुत्र का जन्म हुआ था, उसकी मृत्यु हो गई है। वह इस दुनिया को छोडकर चल बसा है।"

थावच्चा-पुत्र ने माँ के इन वचनों को गौर से सुना और गभीरतापूर्वक इस प्रकार चितन करने लगा- 'इस घटना से सिद्ध होता है कि जिसका यहाँ जन्म होता है उसकी मृत्यु भी निश्चित रुप से हाती है। जो फूल सुबह खिलते हैं वे शाम को मुरझा भी जाते है।'

ऐसा चिंतन करने के पश्चात् थावच्चा-पुत्र ने माँ से अतिम प्रश्न किया- "माँ ! क्या मै भी मरुँगा?"

माँ ने संसार का शाश्वत नियम बताते हुए कहा- "हाँ

बेटा ! यहाँ कोई अमर नहीं रहता। एक दिन सबको इस दुनिया से जाना ही है। मौत अगले क्षण भी हो सकती है और वर्षों तक भी टल सकती है।"

माँ से जीवन की क्षणभंगुरता जानकर वह सोच में पड़ गया कि यदि कुदरत का कानून ही यह है तो मैं ऐसा जीवन जीना चाहता हूँ कि जहाँ बार–बार मरना ही न पड़े। यह सोचकर वह अमरत्व की राह पर चल पड़ा।

इस संसार में कोई भी कालजयी नहीं है और जो भी दृश्य है वह क्षणभंगुर है। गौतम बुद्ध ने भी कहा था–'सब क्षणिक है क्योंकि एक समय से अधिक यहाँ कुछ नहीं ठहरता।' हर उन्नति का पतन होता है, हर सग्रह का अंत में क्षय होता है; हर संयोग का एक दिन वियोग होता है और हर जीवन का अंत मृत्यु से होता है। यदि अनित्यता का बोध हो जाय तो सत्य का दर्शन सभी पदार्थों से मिल सकता है। जो जन्मा है वह जाने वाला है अतः ऐसा ठिकाना पाने का प्रयास करो जहाँ आत्मा को विश्राम मिले। यह काया शीशे की कुप्पी की तरह है, उसके नष्ट होने में देर नहीं लगेगी। इस जीवन का सार इतना ही है कि वस्तुओं की क्षणिकता, जीवन की अनित्यता और मृत्यु की अनिवार्यता का चिंतन करके जीवन को धन्य बनाओ। किसी कवि ने सुदर पक्तियाँ लिखी है–

पंच भूत काया मानव की,
नहीं किसी की कभी रही है,
नहीं किसी की कभी रहेगी।

14 महत्वाकांक्षा की मृगमरीचिका

हजारों ख्वाहिशें हैं ऐसी
कि हर ख्वाहिश पर दम निकले
बहुत निकले मेरे अरमान
लेकिन फिर भी कम निकले

प्रवचनांश

- मानव मन की यह बहुत बड़ी कमजोरी है कि जो सुख उसके पास नहीं है उसके लिए वह सदैव चिंताग्रस्त रहता है।
- महत्वाकांक्षा मानव हृदय की इतनी शक्तिशाली अभिलाषा है कि व्यक्ति चाहे कितने ही उच्च पद पर पहुँच जाय परन्तु वह सतुष्ट नही हो सकता।
- जब ऐसा लगे कि जैसा है वैसा ही अच्छा है, जैसा है वैसा ही हो सकता था, जो है उसके साथ जब तालमेल बैठ जायेगा तभी यह संसार समाप्त होगा।
- जब कोई व्यक्ति अपनी आत्म-ऊर्जा में जीता है तभी परिपूर्ण रुप से विकसित होता है।

14 महत्वाकांक्षा की मृगमरीचिका

जिनवाणी में संसार का स्वरुप इस प्रकार बताया गया— **अहो दुक्खो हु संसारो** अर्थात् यह संसार निश्चित ही दुःख रुप है। आधि, व्याधि और उपाधि से ग्रस्त इस संसार मे सुख की अपेक्षा दुःख की मात्रा अधिक है। कल्पना करिये मनुष्य के पास सौ सुख हो और एक दुःख है तो वह एक दु.ख भी उसे पीडित करता रहेगा। चूँकि सौ सुख होने पर भी वह स्वयं को सुखी नहीं मानता। सौ सुखों में से यदि एक सुख भी चला जाता है तो मनुष्य रोने लगता है हॉलाकि निन्यानवे सुख उसके पास है फिर भी वह रोता है और शिकायत करता है।

मानव मन की यह बहुत बडी कमजोरी है कि जो सुख उसके पास नही है उसके लिए वह सदैव चिंताग्रस्त रहता है। इस महत्वाकांक्षा ने मानव को जन्म से मुत्यु तक दौडाया है। इस दौड में मनुष्य थकान, टूटन और घुटन भले ही महसूस करता हो पर वह अपनी हार नही मान सकता। महत्वाकाक्षा की फॉस आदमी को कितना दौडाती है यह केवल भुक्तभोगी ही बता सकता है। ऐसे व्यक्ति केवल घडी की सूईयों की भॉति घूमते रहते हैं। असलियत तो यह है कि कुछ लोग इस दौड मे चोट खाते है, जख्मी होते है और घावो को सहते है परन्तु उनके मन मे महत्वाकाक्षा का इतना प्रबल आकर्षण रहता है कि वे अपने जख्मो पर मरहमपट्टी करके भी दोबारा दौडने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। जो अपनी इस दौड के प्रति

सजग रहते हैं वे जीवन को जीत लेते हैं।

महत्वाकाक्षा या उच्चाकांक्षा एक ऐसा वृक्ष है जो सदा बढता जाता है। मैक्यावली ने कहा है- महत्वाकांक्षा मानव हृदय की इतनी शक्तिशाली अभिलाषा है कि व्यक्ति चाहे कितने ही उच्च पद पर पहुँच जाय परतु वह संतुष्ट नहीं हो सकता क्योंकि महत्वाकांक्षा लालसा का निकृष्ट प्रतिबिम्ब है।

मनोवैज्ञानिको ने महत्वाकांक्षा की दौड़ का मूल कारण मन मे रही हुई हीनता ग्रंथि को या खालीपन को बताया है। भीतर में रही हुई हीनता ग्रथि को भूलाने के लिए या मन के खालीपन को भरने के लिए महत्वाकाक्षा सहयोग देती है। एक बच्चा जन्म लेने के बाद अपनी उच्चाकाक्षा के अनुसार अनवरत दौड़ता चला जाता है। बचपन में उसे अपने माता-पिता से शिक्षा मिलती है कि प्रथम आने की कोशिश करना, कही तुम पीछे मत रह जाना। उसकी सुप्त चेतना को एक अज्ञात चुनौती मिलती है और उसकी दौड प्रारभ हो जाती है। दौडनेवाला महत्वाकाक्षी चित्त पता नहीं उसे कहॉ तक ले जायेगा ?

यह सत्य है कि इस दौड का परिणाम तनाव, अतंर्द्वन्द्व एव वैमनस्य की कटु श्रखला से अधिक कुछ नही हो सकता। जब तक भीतर मे महत्वाकाक्षा कायम है तब तक यह ससार जारी रहेगा। जब ऐसा लगे कि जैसा है वैसा ही अच्छा है, जैसा है वैसा ही हो सकता था, जो है उसके साथ जब तालमेल बैठ जायेगा तभी यह संसार समाप्त होगा। जैसे-जैसे असुरक्षा, चिन्ता व महत्वाकाक्षा का कॉंटा मन से निकलना

आरंभ होता है वैसे-वैसे आत्मविश्वास और आत्मसंयम जीवन में अपना स्थान बनाते जाते हैं। हमारी निजी भटकन कम होती जाती है और हम स्थिर भाव से समाज के पोषक बन जाते हैं।

एक निर्जन रास्ते पर दो यात्री दौड रहे थे। रास्ते के बीच मे एक तख्ती लगी हुई थी– The Road is Closed. जब उन्होंने तख्ती के आगे नजर दौड़ाई तो देखा कि यहाँ से अभी–अभी कोई गाड़ी गुजरी है क्योंकि पहिये के निशान पडे हुए थे। बस, फिर वे दोनों तो अपनी दोड में लग गये। लगभग तीन मील तक दौडने के बाद उन्होने देखा कि आगे जा नहीं सकते क्योंकि पुल टूटा हुआ है अब उनके पास वापिस लैटने के अलावा कोई उपाय नहीं था। आखिर दोनों जब वापिस लौटने लगे तो उसी तख्ती के दूसरी तरफ लिखा हुआ था– 'यात्री! अब भरोसा आ गया कि रास्ता बंद है।' इसी प्रकार महत्वाकांक्षा के पथ पर दौडता हुआ व्यक्ति इन तख्तियों की और अधिक ध्यान नहीं दे पाता क्योंकि कुछ न कुछ पदचिन्ह आगे दिखाई पडते हैं। अतः दौड पुनः शरु हो जाती है। एक सीमा तक दौड लेने के बाद जब रास्ता ही नहीं होता तब निराशा और हताशा के साथ लैटने की नौबत आ जाती है।

व्यक्ति की महत्वाकांक्षा धन, पद और प्रतिष्ठा के लिए सदैव बनी रहती है। आज का व्यक्ति धन की दौड मे विक्षिप्त हो रहा है। पद-प्रतिष्ठा पाने की दौड में कोई पीछे रहना नही चाहता। तीन–तीन बार पद से च्युत हो जाने पर भी वह उसे वापिस हासिल करना चाहता है। पद के पीछे वह

इतना कायल हो जाता है कि उसे स्थायी बनाने के लिये वह अनेक चालबाजियाँ भी खेलता है जहाँ वह मानवता, प्रेम, मैत्री, भाईचारा, विश्वास और नैतिकता को भी दांव पर लगाने में नहीं हिचकिचाता। इस कुर्सी बनाम सिंहासन ने पता नहीं अब तक कितनी बार अपने भाईयों को लाक्षागृह में जलाया। महत्वाकांक्षा की इस दौड में अब तक न जाने कितने महाभारत के युद्ध हो चुके है। इतिहास में सैकड़ों राजा ऐसे हुए हैं जो अपने महत्वाकाक्षी पुत्रों के हाथों ही मृत्युलोक पहुँच गये। किसी पुत्र ने राज्य सिंहासन के लिए पिता के पैरों में बेड़ियाँ डाली तो किसी ने अपने पिता को कैदखाने की हवा खिलाई और किसी ने उन्हें विषपान करने के लिए विवश किया। एक शायर ने जीवन की वास्तविकता लिखी है-

तमन्नाओं ने हमारी हमें अंधा कर दिया ।
वर्ना हम खुद खुदा होते ।।

एक आदमी पत्थर तोडने का काम करता था। सारा दिन कठोर परिश्रम करने के पश्चात् वह शाम को रुखी-सूखी रोटी जुटा पाता था। एक दिन जब वह पत्थर तोड़ रहा था तो उस समय वहॉ से एक राजा की सवारी निकली। राजा का ऐश्वर्य और ठाठ-बाट देखकर उसके मन में भाव जागे, काश ! मै भी राजा होता तो नौकर मेरे सिर पर भी ऐसा रेशमी छाता धारण करते।

जिस पेड के नीचे वह बैठा था उस पर एक व्यंतर देव का निवास था। उस देव ने उसे राजा बना दिया किन्तु उसके सिर पर नौकरों ने छाता नही पकडा तो धूप से व्याकुल होकर वह सोचने लगा राजा से भी बडा तो सूर्य है अत.

अच्छा होता मैं सूर्य बनता।

जब वह सूर्य बना तो बादलों ने उसे घेर लिया तब वह सोचने लगा कि बादल तो सूर्य से भी अधिक शक्तिशाली है। अत अच्छा हो कि मैं बादल बन जाऊँ और वह देव के प्रभाव से बादल बन गया।

कुछ ही दिनो में बादल बनकर बरसने लगा तो पत्थर की चट्टान पर उसका असर नही हुआ तो सोचा कि इससे अच्छा है चट्टान बन जाना जिसका बादल भी कुछ बिगाड नहीं सकते। अत वह पत्थर बना तो किसी पत्थर तोडनेवाले मजदूर ने उसे तोड दिया। इसी तरह अतत वह पुनः पत्थर तोडनेवाला बन गया।

महत्वाकांक्षा की मृगमरीचिका में प्रत्येक व्यक्ति थकता है, ऊबता है और घायल होता है पर दौड नही छोड पाता क्योंकि दूसरा व्यक्ति उसे विश्राम लेने नही देता। दूसरो को दौडता देखकर प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता और नैतिकता को भूलकर भी येन-केन-प्रकारेण दौड जारी रखता है। हॉलाकि प्रत्येक मनुष्य अनूठा और अद्वितीय है। जब कोई व्यक्ति अपनी आत्म ऊर्जा मे जीता है तभी परिपूर्ण रुप से विकसित होता है।

15 प्रार्थना में मांग न हो

बढ़े धन-धान्य और परिवार
न ऐसी प्रार्थना मेरी
रहूँ समभावी संतोषी
प्रभु ये प्रार्थना मेरी

प्रवचनांश

- सूरज का उदय हो और फूल न खिले तो समझना कि वह फूल नहीं पत्थर है, परमात्मा की प्रार्थना हो और हमारा हृदय न खिले तो जानना कि वह हृदय नहीं; पत्थर है।
- प्रभु के प्रति हमारी प्रार्थना उसी प्रकार निकलनी चाहिए जिस प्रकार वसंत ऋतु मे आम्र वृक्ष को देखकर कोयल के कंठ से स्वतः ही कूक निकल पड़ती है।
- हमारा चित्त ऐसा है जो संसारिक वस्तुओं को ही भज पाता है। जब भी हम प्रार्थना करते हैं तो चित्त परमात्मा तक नहीं पहुँच पाता।
- प्रार्थना याचना करना नहीं है वह तो आत्मा की पुकार है। इसका परिणाम हृदय के द्वारा आत्मा पर होता है।

15 प्रार्थना में मांग न हो

जैसे शरीर की सुदंरता एवं स्वस्थता को बढ़ाने के लिए व्यायाम किया जाता है उसी प्रकार प्रार्थना एक मानसिक तथा आध्यात्मिक व्यायाम है। प्रार्थना से आत्मबल एव आत्मविश्वास बढ़ता है। प्रार्थना का मार्ग समर्पण का मार्ग है। प्रार्थना याचना नहीं अर्पणा है जिससे हृदय के द्वार खुलते है एवं प्राण शक्ति जागृत होती है। किसी दार्शनिक ने कहा है- 'सूरज का उदय हो और फूल न खिलें तो समझना कि वह फूल नहीं पत्थर है; परमात्मा की प्रार्थना हो और हमारा हृदय न खिलें तो जानना कि वह हृदय नही पत्थर है।'

प्रार्थना का सूत्र है तन्मयता अर्थात् प्रभुमय हो जाना। जब तक तन्मयता नही आती तब तक प्रभुमय होने की शक्ति का जागरण नही हो पाता। जो व्यक्ति अपने पुरुषार्थ को प्रबल करता है, वह प्रभुमय होने की शक्ति को जगाता है और उसकी प्रार्थना सफल हो जाती है।

तन्मयता यानी उद्देश्य मे लीन हो जाना। जो स्वय प्रभुमय नही बन सकता वह प्रभु की प्रार्थना कैसे करेगा? प्रार्थना आत्मा की शक्ति है और वह तभी सफल होती है जब प्रार्थना करनेवाला स्वय प्रभुमय हो जाता है।

यदि किसी के हृदय मे परमात्मा के प्रति अनुराग होगा तो उसे प्रार्थना के लिए प्रयास नही करना पडेगा, प्रार्थना हृदय से स्वत. बहेगी। बादल यदि पानी से भरे होंगे तो

अवश्य बरसेंगे। जो बादल खाली है उनसे पानी कैसे बरसेगा? ऐसे ही मन यदि परमात्मा के प्रति श्रद्धा, अनुराग और समर्पण भाव से भरा होगा तो अवश्य प्रार्थना बहेगी, शब्द फूटेंगे।

प्रभु के प्रति हमारी प्रार्थना उसी प्रकार निकलनी चाहिए जिस प्रकार बसंत ऋतुमें आम्र वृक्ष को देखकर कोयल के कंठ से स्वतः ही कूक निकल पड़ती है; क्योंकि कोयल को आम्र से अनुराग है। वर्षा ऋतु में जल से भरे बादलों को देखकर मोर के कंठ से स्वतः ही आवाज निकल पड़ती है क्योंकि मयूर को बादलों से अनुराग है। शरद ऋतु में पराग से भरे कमल को देखकर भ्रमर के कंठ से स्वतः गुंजार निकल पड़ती है क्योंकि उसे कमल और उसके पराग से अनुराग है। प्रार्थना का स्वर भी स्वतः तभी प्रकट होगा जब परमात्मा के प्रति हमारा अनुराग होगा।

प्रार्थना का सार यह है कि प्रभु ने जिस मार्ग पर चलकर प्रभुता प्राप्त की है, हम भी उसी मार्ग का स्वीकार करें और चले। इसलिए प्रार्थना मांग नहीं है। प्रार्थना अगर माग बनी तो उसका अर्थ हुआ शिकायत करना। अर्थात् हे प्रभु ! इतना काफी नही है, कुछ और चाहिए। प्रार्थना का मतलब है प्रभु को धन्यवाद देना। जैसे हमें यह विश्वास है कि स्वच्छ हवा में बैठेगे तो जीवन शक्ति बढेगी और स्वास्थ्य अच्छा होगा। क्या हवा से यह मांग करोगे कि हवा हमारा स्वास्थ्य अच्छा कर दे या हे सूर्य ! हमारी जिदगी को प्रकाश से भर दे। यह तो सूरज का स्वभाव है। जैसे पौधो को कमरे में न रखकर बाहर रखा जाय तो अच्छी रोशनी, ताजी हवा बिना

याचना किये मिल सकती है। सूर्य के प्रकाश में बैठे हो तो रोशनी अवश्य मिलेगी। इसी तरह से प्रार्थना भी स्वतः फलीभूत होती है। संत विनोबा भावे ने प्रार्थना का महत्व बताते हुए कहा है- मनुष्य के अंतस् में शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की वृत्तियॉ विद्यमान है लेकिन अंतरतम में तो शुभ ही भरा है। प्रार्थना से उसी अतरतम में प्रवेश होता है। प्रार्थना के संयोग से हमे बल मिलता है और अहकार को शून्य करने में प्रार्थना सहायक बनती है।

हमारा चित्त ऐसा है जो सांसारिक वस्तुओं को ही भज पाता है। जब भी हम प्रार्थना करते हैं तो चित्त परमात्मा तक नही पहुॅच पाता। वह उन्ही चीजों तक पहुॅच पायेगा जिन चीजो से मन के संबंध रहे हैं या जिन चीजों को उसने सदा से चाहा है।

किसी नगरी मे विद्वानों की गोष्ठी का एक आयोजन रखा गया। उस में देश-विदेश के अनेक विद्वान् सम्मिलित थे। गोष्ठी का एक विषय था- ईश्वर की प्रार्थना करते समय क्या मागना चहिए? एक विद्वान् का अभिमत था- "यदि मैं प्रार्थना करुँगा तो ईश्वर से अन्न की ही मांग करुँगा क्योंकि उसी पर हम सबका जीवन टिका हुआ है।"

इस बात का खडन करते हुए दूसरे विद्वान् ने कहा- "नहीं, अन्न पैदा करने के लिए तो भुजा मे शक्ति चाहिए अत मै प्रार्थना में शक्ति की मांग करना चाहूॅगा।" इसे अस्वीकार करते हुए तीसरे विद्वान् ने कहा- "नही, शक्ति होने पर भी यदि अक्ल नही है तो कुछ भी नहीं हो सकता!

शक्ति तो शेर में भी होती है किन्तु क्या वह अनाज पैदा कर सकता है? अतः यदि मैं प्रार्थना करूँ तो परमात्मा से अक्ल की ही मांग करूँगा।"

इस बात का खंडन करते हुए अमुक विद्वान् ने कहा- "नही, अक्ल से तो क्लेश पैदा होता है, क्लेश से शान्ति भंग होती है अतः मैं यदि प्रार्थना करुँ तो भगवान से शांति की माग करना उचित समझता हूँ।"

इस विचार को नकराते हुए एक विद्वान् बोला- " शांति भी क्या मांगने की चीज है? वह तो हमारे अंतस् का परिणाम है। सिर्फ प्रेम मांगो, शाति स्वतः आ जायेगी।" उसकी इस बात का विरोध करते हुए किसी विद्वान् ने कहा- त्याग के बिना प्रेम कैसे स्थायी रहेगा? जीवन की असली चीज तो त्याग है।" इस पर अन्य विद्वान् ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा- "श्रद्धा के अभाव में त्याग कभी सभव नहीं होता अतः मैं प्रभु से श्रद्धा की मांग करना चाहता हूँ।"

इस विचार-धारा को अमान्य करते हुए किसी विद्वान् ने कहा- "जब तक हृदय मे नास्तिकता का वास होगा तब तक सम्यक् श्रद्धा आयेगी ही नहीं अत नास्तिकता का नाश ही मेरी प्रार्थना की माग है।" इस प्रकार यह गोष्ठी वाद-विवाद में परिणत हो गई। जिस पेड के नीचे यह आयोजन रखा गया था उस पेड़ पर एक यक्ष देवता का निवास था। जब वाद-विवाद में स्वमत का आग्रह बढने लगा तब यक्ष प्रकट हुआ और कहने लगा- "भक्तो! भगवान की प्रार्थना मे किसी भी प्रकार की मांग की जरुरत नहीं है। प्रार्थना करने पर

सब कुछ स्वयं ही मिल जायेगा सिर्फ भावपूर्वक प्रार्थना करो तो सही।" इस बात से सब विद्वान् संतुष्ट हो गये।

प्रार्थना में जब मांग आती है तो भक्त उपासक न रहकर याचक बन जाता है। प्रार्थना याचना करना नहीं है वह तो आत्मा की पुकार है। इसका परिणाम हृदय के द्वारा आत्मा पर होता है। यह कोई मान्त्रिक वस्तु नहीं है, वरन् हृदय की क्रिया है। याचना का त्यागी ही प्रार्थना का प्रेमी बन सकता है।

प्रार्थना एक निष्काम कर्म है। अगर उसके बदले में मनुष्य में फलासक्ति उत्पन्न हो जाय तो प्रार्थना कलुषित हो जाती है। England के बादशाह George VI ने प्रार्थना की थी- "हे भगवन् ! मुझे ऐसी शक्ति दो कि में उन चीजों को बदल डालूँ जिन्हें बदल सकता हूँ। उन चीजों को सहन करूँ जिन्हें मैं बदल नहीं सकता। मुझे ऐसा विवेक दो कि मैं बदलने लायक और सहने लायक का ठीक-ठीक निर्णय कर सकूं।" एक भक्त की सच्ची प्रार्थना इस प्रकार ही होती है-

करो रक्षा विपत्ति से न ऐसी प्रार्थना मेरी ।
विपत्ति से भय न खाऊँ प्रभु ये प्रार्थना मेरी ।।

16 जीवन सौरभ

जब मिलो जिससे मिलो
दिल खोलकर दिल से मिलो
इससे बढ़कर दुनिया में
और कोई खूबी नहीं है

प्रवचनांश

- प्रत्येक व्यक्ति के लिए 'प्रेम' शब्द की गहराई को जानना आवश्यक है क्योंकि जो लोग प्रेम का स्वरुप नहीं जानते वे प्रेम की जगह विविध कामनाओं मे भटक जाते हैं।
- प्रेम चित्त की एक ऐसी दशा है जहॉ तुम इतने स्वस्थ हो गये हो कि न तुम स्वयं को दुःख पहुॅचाना चाहते हो ना ही दूसरों को।
- जब प्रेम ईश्वर के प्रति हो तो भक्ति बन जाता है; जब प्रेम अपनत्व के रंग मे घुलता है तो मित्रता बन जाता है....
- आश्चर्य तो इस बात का है कि जहॉं इतना प्रेम दिया और लिया जा रहा हो वहॉ प्रेम की एक बूंद भी दिखाई नहीं पड़ती।

16 जीवन सौरभ

किसी चिंतक ने कहा है-जीवन एक पुष्प है और प्रेम उसका सौरभ है। जैसे बिना सुवास के फूल का कोई महत्व नहीं होता ऐसे ही बिना प्रेम के जीवन भी अर्थहीन बन जाता है। इसलिए प्रेम जीवन में आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। बालक हो या वृद्ध, स्त्री हो या पुरुष, भोगी हो या त्यागी, संत हो या शैतान सभी प्रेम चाहते हैं क्योंकि जीवन की सभी अवस्थाओं में प्रेम जरुरी है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए 'प्रेम' शब्द की गहराई को जानना आवश्यक है क्योंकि जो लोग प्रेम का स्वरुप नहीं जानते वे प्रेम की जगह विविध कामनाओ में भटक जाते हैं और उसे ही प्रेम मान लेते हैं।

इस दुनिया मे माता अपने बच्चे से प्रेम करती है; बहन अपने भाई से प्रेम करती है, पिता अपने पुत्र से प्रेम करता है, पत्नी अपने पति से प्रेम करती है किन्तु वे सब प्रेम का वास्तविक स्वरुप नहीं जानते। जब तक प्रेम के स्वरुप को नही जाना जायेगा तब तक सच्चा प्रेम नहीं किया जा सकता। आज के युग मे प्राय· सच्चा प्रेम या तो होता नहीं है और यदि हो जाय तो लम्बे समय तक टिकता नहीं है और यदि टिक भी जाय तो बढता नही है।

अक्सर लोग प्रेम का स्वरुप समझे बिना ही प्रेम करना प्रारम्भ कर देते है। कुछ लोग सिर्फ दूसरो से प्रेम चाहने के लिए प्रेम करते हैं। जब प्रेम का वास्तविक स्वरुप समझ

में आयेगा तभी प्रेम का अमृत अंतश्चेतना को नव जीवन प्रदान कर सकेगा तब हमारी दृष्टि निर्मल और स्निग्ध बनेगी तथा वाणी भी सुधारस की वृष्टि करेगी।

महात्मा गांधी ने कहा है-'प्रेम ही संसार की सूक्ष्मतम शक्ति है जिसने दुनिया पर शासन किया है।' प्रेम करने का अर्थ है अपनी प्रसन्नता और अपनी संवेदनाओं को अभिव्यक्त करना, बांटना और उनका विस्तार करना; फिर भी प्रेम कभी अपने समग्र रुप में प्रकट नहीं हो सकता क्योंकि वह अनुभूति है।

प्रेम एक अवस्था विशेष है, संबध नहीं। प्रेम चित्त की एक ऐसी दशा है जहाँ तुम इतने स्वस्थ हो गये हो कि न तुम स्वयं को दुःख पहुँचाना चाहते हो ना ही दूसरों को। अधिकांश लोगों के लिए प्रेम का तात्पर्य है- 'अमुक व्यक्ति पर मेरा अधिकार है' ऐसी अधिकार की भावना ईर्ष्या को जन्म देती है। इस तरह का प्रेम एक प्रकार की पकड है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को रिक्त और असुरक्षित अनुभव करता है इसलिए पकडने की और अधिकार जमाने की चेष्टा चलती है। इस चेष्टा से ईर्ष्या, भय, शंका, द्वन्द्व और व्याकुलता पैदा होती है। निस्संदेह ऐसा अधिकार कभी प्रेम नहीं हो सकता।

स्मरण रहे कि प्रेम भावुकता नहीं है। भावुक होना तो किसी एक प्रकार के आवेग से प्रभावित होना है। कोई भी आवेग बल,बुद्धि और क्षमता का दिवाला निकाल देता है। जब किसी भी भावुक व्यक्ति को अपनी भावुकता की प्रतिक्रिया

नहीं मिलती या उसे भावना की अभिव्यक्ति का मार्ग नहीं सूझता तब वह क्रूर बन जाता है। जहाँ प्रेम हो वहाँ क्रूरता, वैर भाव, भय और हीनता नहीं होती। कहा भी है-

प्रेम की भाषा जो एक बार जान गया ।
सचमुच वह आदमी आदमी को पहचान गया ।।

जैन दर्शन में प्रेम के लिए 'पेज्ज' शब्द का प्रयोग किया गया जिसका अर्थ है प्रिय या रुचिकर। आध्यात्मिक दृष्टि से यह राग है जो छोडने जैसा है। इसलिए हमारे जीवन का उद्देश्य वीतराग बनना है।

यह राग भाव दो प्रकार का होता है-प्रशस्त राग और अप्रशस्त राग। अप्रशस्त राग को समझाने के लिए गुलाब के तेल की उपमा दी है। जिस प्रकार गुलाब का तेल कपडे पर लगाने से खुशबू तो देता है परन्तु कपड़े पर दाग छोड़ जाता है। प्रशस्त राग गुलाब के इत्र की भाँति है जो वस्त्र पर लगाने से सुगन्ध भी देता है और दाग भी नहीं लगाता।

गुजरात के प्रसिद्ध सत स्वामी सहजानद जी का अनन्य भक्त आत्माराम जो एक साधारण दर्जी था। गुरु को भेट करने के लिए उसने एक बहुत सुंदर अंगरखा बनाया। स्वामी जी के जन्मदिन पर वह अंगरखा उसने अहोभाव से गुरुदेव को भेट किया। स्वामी जी ने भी बडी प्रसन्नता से उसे स्वीकारा। इस अवसर पर भावनगर नरेश भी वहॉ उपस्थित थे। जब नरेश ने इतना शाही अगरखा देखा तो वे भी बड़े प्रफुल्लित हुए कि ऐसा शाही अगरखा तो मेरे पास भी नहीं है।

नरेश ने हंसते हुए आत्माराम को अपने लिए भी ऐसा ही एक अंगरखा सीने का आदेश दिया। नरेश के आदेश को पाकर आत्माराम ने उत्तर दिया- राजन् ! ऐसा दूसरा अंगरखा बनाना मेरे लिये तो बहुत मुश्किल है क्योंकि मेरे रोम-रोम में गुरुदेव के प्रति जो प्रीति रही हुई है उसके टाँके अंगरखे में लगे हुए हैं। आपके अंगरखे को बनाने के लिए मैं वैसी प्रति कहाँ से लाऊँ और वे प्रीति के टाँके कैसे लगाऊँ ?" प्रेम-रस से आप्लावित सामान्य वस्तु भी बड़ी मूल्यवान बन जाती है और साधारण व्यक्ति भी असाधारण बन जाता है।

प्रेम का स्वरुप समझाते हुए चिंतकों ने कहा- प्रेम पानी की तरह तरल है और जल की तरह प्रेम का भी अपना कोई रंग नहीं होता। जब प्रेम ईश्वर के प्रति हो तो भक्ति बन जाता है, जब प्रेम अपनत्व के रंग में घुलता है तो मित्रता बन जाता है, जब प्रेम दुखी की सेवा-सहायता के लिए हो तो करुणा बन जाता है; सद्गुणों के प्रति हो तो प्रमोद और संतान के प्रति हो तो वात्सल्य बन जाता है।

ऐसे अनेक स्वरुपवाले प्रेम को खोजने और मागने के बजाय हम भीतर के प्रेम को लुटाना सीखे व देना सीखें। इस कलियुग में सब प्रेम देते हैं बिना इसकी फिक्र किये कि क्या हमारे पास प्रेम है ? सारे लोग प्रेम बरसा रहे है लेकिन वह प्रेम किसी मरुस्थल में खो जाता हैं एक-एक आदमी हजार-हजार दरवाजों से प्रेम बरसा रहा है पर दुर्भाग्य

यह है कि सारा प्रेम घृणा का सागर बन रहा है। आश्चर्य तो इस बात का है कि जहॉ इतना प्रेम दिया और लिया जा रहा हो वहाँ प्रेम की एक बूँद भी दिखाई नहीं पड़ती।

यह मजे की बात है कि जो हमारे पास नहीं है उसे देने का हम अभिनय करते है। इस अभिनय की कला का परिणाम यह आता है कि प्रेम किसी के पास पहुॅचता ही नहीं है।

प्रेम रस की धारा के विषय में चिंतक ने कहा है- आकाश में छाया ऐसा बादल बेकार है जो पानी से भरा हुआ न हो और जिससे पानी की बूॅदें टपक न सकती हों; धरती पर उगा ऐसा वृक्ष भी बेकार है जो फलों से लदा हुआ न हो और जिससे फलों की प्राप्ति न हो सकती हो, ऐसा मानव हृदय भी बेकार है जो प्रेम से भरा हुआ न हो और जिसमें से प्रेम रस की बूॅदे टपक न सकती हों..

17 जाग सके तो जाग

अब एक रात अगर
कम जिएँ तो कम ही सही
यही बहुत है कि हम
मशालें जला के जिएँ

प्रवचनांश

- जागरण के अभाव में जीवन की समस्त शक्तियाँ बिखर जाती है क्योंकि एकसूत्रता नहीं रह पाती।
- जीने का पहला ढंग ऐसा है जैसे कोई नींद मे जी रहा हो अर्थात् मैं कौन हूँ, कहाँ जा रहा हूँ, क्यों जा रहा हूँ इसका उसे कोई बोध नहीं होता।
- जागरण सुरक्षा है, जैसे घर मे दीया जल रहा हो तो चोर नहीं आते इसी प्रकार जिसके भीतर जागृति का उजाला हो जाय तो वह पाप नहीं कर सकता।
- जागो... आत्मा में अनंत ज्ञान-संपदा छिपी है, उसकी खोज करो....

17 जाग सके तो जाग

उपनिषद में ऋषि-मुनियों ने कहा है-

उत्तिष्ठत्, जागृतः प्राप्य वरान् निबोधात्

अर्थात् उठो, जागो और श्रेष्ठ बोध को प्राप्त करो। जो दिन और रात्रियॉ बीत रहीं हैं वे लौटकर नही आ सकती। जो जीवन एक बार हाथ से निकल जायेगा वह पुनः प्राप्त नहीं होगा इसलिए जीवन का सार जागरण में है। ज्ञानियों ने इस संसार में जीवन की प्राप्ति को दुःख का कारण नहीं बताया अपितु सोये-सोये जीवन को बीता देना ही दुःख का कारण है।

हमारे भीतर की जीवन-धारा जन्म-जन्म से सोई हुई है। इस सुप्त जीवन-धारा के कारण ही अंतस् की शक्तियाँ निष्क्रिय हो गई है। ठीक उसी प्रकार जैसे कोई Bulb जल रहा हो और अचानक कोई तार काट दे तो रोशनी लुप्त हो जाती है। हाँलाकि Bulb तो पूर्ववत् है परतु विद्युत की धारा न मिलने से वह Bulb निष्क्रिय हो जाता है।

जागरण के अभाव मे जीवन की समस्त शक्तियॉ बिखर जाती हैं क्योंकि एकसूत्रता नहीं रह पाती। ऐसे में जीवन एक भटकाव बनकर रह जाता है, जीवन की एक दिशा नहीं रह पाती। इस परिस्थिति मे मनुष्य की हालत ऐसी हो जाती है जैसे किसी गाडीवान् ने अपनी बैलगाड़ी में दोनो और बैल तो जोत लिये हो पर वह स्वयं सोया हुआ हो और फिर भी कही पहुँचने की आशा रखता हो।

साधारणतया मनुष्य दो तरह से जीता हैं। जीने का पहला ढंग ऐसा है जैसे कोई नींद में जी रहा हो अर्थात् मैं कौन हूँ, कहाँ जा रहा हूँ, क्यों जा रहा हूँ इसका उसे कोई बोध नहीं होता। ऐसे में वह गतानुगतिक रुप से जिंदगी को आगे धकेल रहा है और यंत्रवत् उसकी हर क्रियाएँ होती चली ज़ाती हैं। उसका रुकना मुश्किल है इसलिए वह चला जा रहा है। इसे बेहोशीपूर्ण सुप्त-जीवन कहा जाता है।

एक राजनीतिज्ञ किसी समारोह में भाषण देने गया। मंच पर उसने अपना लिखित भाषण आधा ही पढ़ा था कि श्रोताओं में खुसर-फुसर होने लगी। कुछ लोग तो बीच में से उठकर जाने लगे। यहाँ तक कि एक घंटे का भाषण सभाप्त होने पर किसी ने ताली भी नहीं बजाई। यह देख राजनीतिज्ञ का पारा चढ गया।

अपने कार्यस्थान पर लौटते ही उसने अपने सचिव को डॉटते हुए कहा- "मैंने तुम्हे पंद्रह मिनिट का भाषण तैयार करने के लिये कहा था, एक घंटे का नही अत. मैं तुम्हें आज ही नौकरी से बर्खास्त करता हूँ।"

सचिव ने बडे नम्र स्वर मे कहा सर! मैंने तो आपका भाषण पंद्रह मिनिट का ही तैयार किया था और साथ ही पंद्रह मिनिट के भाषण की तीन प्रतियॉ करवाई थी। लगता है आप तीनों प्रतियाँ साथ ले गये और उन्हें पढकर आये इसमें मेरा क्या कसूर है?" यह सुनकर उस राजनीतिज्ञ को अपनी बेहोशी का एहसास हुआ।

जीने का दूसरा ढंग है होशपूर्वक जीना अर्थात् जागकर

जीना। जहाँ प्रत्येक कार्य सुनियोजित व सुविचारित है इसलिए जागा हुआ व्यक्ति बुद्ध कहलाता है। ऐसा व्यक्ति यदि कदम भी उठाता है तो जागकर, श्वांस भी लेता है तो यह जानते हुए कि श्वांस ली जा रही है। जानने की सतत धारा उसके भीतर चलती रहती है। ऐसी जागृति को चिंतको ने विवेक कहा और संत कबीर ने सुरति। सुरति यानि सम्यक स्मृति (Right Mindfulness) जे. कृष्णमूर्ति ने इसे Awareness कहा है। ऐसी जागृतात्मा जानकर कोई गलत कार्य नहीं कर सकती। कहा भी है-

साँस-साँस जीना सीख जाय यदि होश से ।
फिर देखो जिंदगी जीना कितना आसान है ।।

हमारा जागरण बिलकुल सतही है। अर्थात् जुगनू की भाँति है जो अंधेरे में चमकता तो है पर उस प्रकाश मे अध्ययन नही हो सकता। हमारा तथाकथित जागरण भी निद्रा ही है। जागने की दिशा में चलें इससे पूर्व यह जानना आवश्यक है कि हम अंतस् में सोये हुए हैं। सुप्त व्यक्ति मोहनिद्रा में अपनी जीवन-बगिया को अपने ही हाथों से उजाड देता है।

एक सेठ ने अपने घर के सामने एक सुंदर बगीचे का निर्माण करवाया। यह बगीचा अनेक वृक्ष और रंगबिरंगी फूलों की लताओं से सुरम्य था। एक दिन सुबह जब सेठ बगीचे में टहलने गया तो उसने पाया कि रात में कोई इस बगीचे के पेड पौधों को उखाड़ गया है और सारा बगीचा आधी-उजड़ी हालत में है। यह देखकर सेठ को संदेह हुआ कि शायद

पड़ौसी की कुछ शरारत न हो क्योंकि उनको मेरे सुंदर बगीचे को देखकर ईर्ष्या हो सकती है। अतः सेठ ने दूसरे ही दिन से सुरक्षा के कुछ इन्तजाम जुटायें और बगीचे के चारों ओर जासूस बिठा दिये लेकिन पता लगा कि कोई पडौसी गडबड नहीं कर रहा है। फिर भी आश्चर्य तो इस बात का था कि रोज बगीचा उसी उजडी हालत में दिखाई देता था। अब सेठ की चिंता बहुत बढ गई।

किसी बुजुर्ग व्यक्ति की सलाह से वह गांव के बाहर रहने वाले फकीर के चरणों में पहुँचा और उस ने अपनी सारी व्यथा फकीर को सुनाई। समस्या को अच्छी तरह से समझने के बाद फकीर ने कहा- "वत्स ! तू एक काम कर; अपनी घड़ी में ठीक आधी रात का अलार्म भर दे और सात दिन तक जब अलार्म बजे तो जागकर पॉच मिनिट अपने आस-पास देखना और सो जाना।" यह सुनकर सेठ को तसल्ली नहीं हुई। फिर भी फकीर की बात को उस ने स्वीकार कर लिया।

मध्यरात्रि का अलार्म घडी मे भरकर वह सो गया। दो दिन तक तो सेठ को कुछ समझ में नही आया। तीसरे दिन जब अलार्म बजा तो सेठ ने पाया कि वह बगीचे मे खडा-खड़ा वृक्ष को उखाड रहा था, पत्ते तोड रहा था, फूल बिखेर रहा था। स्वय को इस अवस्था मे देखकर वह हैरान हो गया और उसे समाधान भी मिल गया।

सुबह होते ही वह फकीर के चरणो में पहुँचा और उस ने कहा-"यदि आप मुझे न जगाते तो मैं न मालूम इस सुप्त

अवस्था में और कितने दिनों तक अपने ही हाथों से बगीचे को तहस-नहस करता रहता था। आपने जगाकर मुझे यह बोध करा दिया कि कोई दूसरा मेरी बगिया में हानि नहीं पहुँचा रहा है।"

ठीक इसी तरह से मोहनिद्रा में सोया हुआ प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीवन-बगिया को स्वयं उजाड़ देता है। इसीलिए जागना जरुरी है। जागरण सुरक्षा है, जैसे घर में दीया जल रहा हो तो चोर नहीं आते। जिसके भीतर जागृति का उजाला हो जाय वह पाप नही कर सकता। ऐसा कोई क्षण नहीं जब तुम जाग न सको या पलक न खोल सको।

भारतीय सस्कृति का स्वर है–

कोई जागे या न जागे ये मुकद्दर है उसका ।
लेकिन आपका फर्ज है कि आवाज लगाते जाइये ।।

जागो.. ! रात मे सुबह छिपी है, काटो की झाड़ी में फूल छिपा है, बादलों की अंधेरी में घटाओ में चाँद-नक्षत्र छिपे हैं उनकी तलाश करे। आत्मा मे अनत ज्ञान-संपदा छिपी है, उसकी खोज करें...।

18 जो चाहें सो पायें

बहुत बार आता है पतझड़
लेकिन इससे वसंत पर भरोसा थोड़े ही खो देते है
बहुत बार उजड़ जाता है चमन
इससे कोई आशियाँ बनाना थोड़े ही छोड़ देते हैं

प्रवचनांश

- मनुष्य की चाहत में और उसकी प्राप्ति में बड़ा फासला है जिसे देखकर वह हताश और निराश हो जाता है। निराशा मनुष्य का सबसे बडा पाप है।
- उत्साहपूर्ण जीवन रबर के गेद की तरह है जो ऊपर से नीचे गिरने पर और दुगुने वेग से ऊपर उछलती है।
- घोर निराशा के क्षणों मे यह स्मरण रखना चाहिये कि हर अमावस्या के बाद पूर्णिमा निश्चित है और हर काली रात प्रभात की उज्जवलता लेकर आती है।
- अतीत के अनुभव को ही सब कुछ मत मान लेना। एक बार फिर से प्रयास करो।
- ईश्वर एक रास्ता बद करता है तो हजार रास्ते खोल देता है।

18 जो चाहें सो पायें

इस धरातल पर जीवन जीनेवाला प्रत्येक मनुष्य अपनी-अपनी चाहत के मुताबिक जीना चाहता है। जिसकी जैसी चाह होती है उसके अनुसार वह प्रयास भी करता है किन्तु अंत में पाता है कि उसने जैसा चाहा था वैसा फल उसे नहीं मिल पाया। अतः आज के मानव की यह समस्या है 'जो चाहें सो कैसे पायें?' मनुष्य की चाहत में और उस की प्राप्ति में बड़ा फासला है जिसे देखकर वह हताश और निराश हो जाता है। निराशा मनुष्य का सबसे बड़ा पाप है। निराश व्यक्ति के हृदय की अग्नि बुझ जाती है और उसकी सारी अभिप्साएँ सो जाती है। निराशामय जीवन धारा निश्चय रुप से व्यक्ति का उर्ध्वगमन रोक देती है। ऐसे में चाहत की प्राप्ति के लिए आशावादी बनना जरुरी है।

जिस जीवन में आशा का संचार न हो वह जीवन राख के ढेर की तरह है जिसमे कितनी भी फूक मार लो किन्तु आग प्रकट नहीं हो सकती। जिसके जीवन मे आशा के अंगारे ही न हो वह जियेगा कैसे? माना कि जीवन मे शूल की चुभन है, पीड़ा और वेदना भी है परतु यह भी तो उतना ही सत्य है कि उस शूल में फूल की भी चाह और संभावना छिपी हुई है। इस चाह और सभावना का नाम ही आशा है।

आशापूर्ण जीवन आग के शोले की तरह है। जैसे ही फूँक मारो वह अंगारा बनकर और अधिक देदीप्यमान हो जाता है। इससे विपरीत उत्साह हीन जीवन मिट्टी के ढेले की भाँति होता है जो ऊपर से नीचे गिरते ही बिखर जाता है। उत्साह पूर्ण जीवन रबर के गेंद की तरह है जो ऊपर से नीचे गिरने पर और दुगुने वेग से ऊपर उछलती है।

उम्मीदों पर दुनिया कायम है। आशा ही वह प्रेरणा है जो उसकी सुप्त शक्ति को जगाती है और उसकी निष्क्रिय चेतना को सक्रिय करती है। वे व्यक्ति धुएँ से कभी निराश नहीं होते जिन्हें ज्योति की आशा है।

रहट में लगे घडों के सबंध में एक बडी दिलचस्प बात है। रहट में लगे हुए घडे इस तरह बधे हुए हैं कि जब एक घडा औंधे मुँह किए नीचे की ओर जाता है तब दूसरा घड़ा पानी लेकर ऊपर की ओर आता है। नीचे की ओर जानेवाला घडा निराशावादी है जो हर समय यह बुडबुडाता है कि संसार रीता है, इसमें कोई सार नहीं है। दूसरा घडा आशावादी है जो यह सोचता है कि यह संसार कितना सुहावना और हरा-भरा है। जैसा चाहें वैसा इस जीवन-घट मे भरने के लिए प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र है। इसी तरह का आशावादी दृष्टिकोण मन को उत्साह से भर देता है।

प्रायः जीवन में ऐसा होता है कि अनुकूल परिस्थितियों में तो आशा हमें प्रकाश और विश्वास देती है किन्तु प्रतिकूल परिस्थिति में व्यक्ति के आशा का दीपक बुझ जाता है। घोर निराशा के क्षणो मे यह स्मरण रखना चाहिये कि हर अमावस्या के बाद पूर्णिमा निश्चित है और हर काली रात प्रभात की उज्जवलता लेकर आती है। यदि जिंदगी में एक कार्य पूर्ण नहीं हो पा रहा हो तो यह मत सोचिए कि दूसरे कार्य भी कभी पूरे नहीं होंगे। किसी शायर ने भी कहा है-

एक सपना टूट गया तो दूसरा बनाइए ।
जिंदगी को जिंदगी की तरह बिताइए ।।

कहते है एक बार Scotland का राजा Robert Bruse युद्ध में पराजित हो गया तो जंगल मे जाकर छिप गया। वह

बड़ा ही निराश जीवन जीने लगा। उसकी राज्य-प्राप्ति की आशा बिखर गई थी अतः वह निरंतर निराशा के घेरे में धँसता चला जा रहा था। एक दिन उसकी दृष्टि एक मकड़ी पर गई जो जाला बुन रही थी। राजा देख रहा था कि वह जाला बार-बार टूटता जाता था और वह मकड़ी पुनः प्रयास कर रही थी। जितनी बार जाला टूटा हर बार उसने उसे बुनने का दोबारा प्रयत्न किया। राजा यह देख कर हैरान हो गया कि वह मकड़ी जाला बुनने में सफल हो गई। राजा ने सोचा मेरे से तो यह मकड़ी अच्छी है। मैं तो एक बार की असफलता से ही निराश हो गया। राजा का मन आशा से भर गया उसने फिर से शत्रु पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की।

आशा का अर्थ है - विधेयात्मक दृष्टिकोण। चाहे कुछ भी परिणाम घटित हो किन्तु एक बार फिर से प्रयास करो। अतीत के अनुभव को ही सब कुछ मत मान लेना। एक बार और प्रयोग कर लेना। भारतीय चिंतकों की एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है- **'बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध लेहि।'** संभव है भविष्य में कुछ नया और अच्छा भी हो सकता है। जो अब तक हो चुका है उसे भूला देने में मजा है वर्ना निराशा की बदलियों से हम सदा घिरे रहेंगे। जो अब तक हुआ है वही सदा होता रहेगा ऐसा मान लेना निराशा का लक्षण है कहा भी है-

If God blocks one way, he opens a thousand others.

अर्थात् ईश्वर एक रास्ता बंद करता है तो हजार रास्ते खोल देता है।

अमेरिका का प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिसन अपनी प्रयोगशाला में एक प्रयोग करने में संलग्न था। वह प्रतिदिन सुबह से शाम तक अपने मित्रों के साथ प्रयोगशाला में व्यस्त रहता था। सतत

परिश्रम के बाद भी उसे प्रयोग में सफलता नहीं मिल रही थी। इस तरह कड़ी मेहनत करते-करते तीन वर्ष बीत गए। जब चौथा वर्ष बीतने लगा तो उसके सहयोगियों ने कहा- "एडिसन ! अब बहुत हो गया, हमारा धैर्य टूट रहा है। क्या जिंदगी भर हम यह एक ही प्रयोग करते रहेगें? यदि सात सौ बार प्रयोग करने पर भी हम सफल नहीं हो पा रहे हैं तो अब और कितनी देर तक उम्मीद रखी जा सकती है? आप में तो अटूट धैर्य है अतः आप रोज सुबह उसी उत्साह और आनंद से आते हैं और प्रयोग में जुट जाते हैं किन्तु अब हम से यह प्रयोग आगे नहीं हो सकेगा।"

यह सुनकर एडिसन ने मुस्कुराते हुए कहा- "साथियो ! अब रुकने की क्या जरुरत है? सात सौ रास्ते हम ऐसे देख चुके हैं जो कि गलत साबित हो गये। इसका मतलब यह है कि अब ठीक रास्ता बहुत करीब है। आखिर कितने रास्ते गलत होगे। सफलता दिन-प्रतिदिन हमारे करीब आ रही है। मुझे लगता है कि हमारी हर हार, जीत की तरफ बढता हुआ एक कदम है।"

जीवन में यदि ऐसी आशा बनी रहें तो साहस बढता है जिससे व्यक्ति जो चाहे सो प्राप्त कर सकता है। सफलता की चरम सीमा का स्पर्श कर सकता है। कहा भी है-

छुप-छुप आँसू बहानेवालों !
एक फूल के मुरझाने से
गुलशन नहीं उजड़ा करता ।
एक चेहरे के रुठ जाने से
दर्पण नहीं टूटा करता ।।

19 जीवन का निर्माण

दीप से जलना न सीखो, दीप से मुस्कान सीखो
सूर्य से ढ़लना न सीखो, सूर्य से उत्थान सीखो
सोचना है हम स्वयं इस विश्व में अंकित कहाँ है
जीवन को बीताना ही नहीं जीवन का निर्माण सीखो

प्रवचनांश

- जन्म और जीवन में अंतर है। जन्म सिर्फ एक अवसर है जो बीज की प्रसुप्त सभावना की भाँति प्राप्त होता है। यह संभावना उजागर हो भी सकती है और खो भी सकती है।
- जीवन मिल गया तो सब मिल गया ऐसा मत समझो क्योंकि जीवन का उतना ही मूल्य है जितना हम उसमें पैदा कर सकते हैं।
- यह ख्याल रहे कि जीवन मे जो भी श्रेष्ठ है, महत्वपूर्ण है और पाने योग्य है उसे निर्मित करना होता है।
- जीवन एक अनगढ पत्थर है। हर पत्थर में मूर्ति है सिर्फ छाटने, काटने और संवारने के लिए सृजनात्मक साधना की जरुरत है।

19 जीवन का निर्माण

जन्म का प्रारंभ तो सभी का एक जैसा है लेकिन अंत एक जैसा नहीं होता। सुबह तो सभी की समान है किन्तु शाम भिन्न-भिन्न है। जन्म तो कोरे कैनवास की भाँति मिलता है जिसमें जीवन को उपलब्ध करना होता है। स्मरण रहे, जन्म जीवन नहीं है वह तो मात्र एक सुदर-सा उपहार है। इसीलिए सारी संस्कृतियाँ माता-पिता को बहुत आदर देती है। मनीषियों का कथन है कि हर व्यक्ति द्विज बन सकता है। द्विज का अर्थ है- दूसरा जन्म। जब व्यक्ति जन्म को धारण करके जीवन का निर्माण करता है तब उसका दूसरा जन्म होता है।

जन्म और जीवन में अंतर है। जन्म सिर्फ एक अवसर है जो बीज की प्रसुप्त संभावना की भाँति प्राप्त होता है। यह संभावना उजागर हो भी सकती है और खो भी सकती है। जन्म एक बुझे हुए दीपक की तरह मिलता है। इस जीवन-दीप को जला लेने से अधिक इस जीवन का और क्या आंत्यांतिक अर्थ हो सकता है ? जीवन मिल गया तो सब मिल गया ऐसा मत समझो क्योकि जीवन का उतना ही मूल्य है जितना हम उसमें पैदा करते है। जीवन तो एक तटस्थ मौका है, चाहे तो उसका निर्माण कर लो या फिर कचरा भरकर उसे व्यर्थ कर लो। इसलिए मनुष्य स्वयं अपना निर्णायक है। इस स्वतंत्रता के कारण ही मनुष्य को श्रेष्ठता मिली है। यह जन्म सीढी की भाँति दोनो दिशाओं मे गति करता है। यदि ऊपर चढना हो तो श्रम करना होता है और

नीचे उतरने के लिए श्रम की जरुरत नहीं है।

प्रत्येक व्यक्ति यह जानना चाहता है कि जीवन का अर्थ क्या है? जीवन का अपने आप में कोई अर्थ नहीं होता, अर्थ तो उसमें डालना होता है। ऐसा भी नहीं हो सकता कि जीवन में कोई Readymade अर्थ का निर्माण करना होता है। यह ख्याल रहें कि जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, महत्वपूर्ण है और पाने योग्य है उसे निर्मित करना होता है। इससे विपरीत जो व्यर्थ है, कचरा है वह बिना मेहनत किये ही उग आता है। यदि कोई व्यक्ति बगीचा लगाना चाहता हो तो उसे जमीन की खुदाई प्रारंभ करके व्यर्थ के पत्थरों को हटाना होगा, मिट्टी को बदलना होगा फिर खाद डालकर भूमि को सरसब्ज बनाकर बीज बोना होगा ताकि फूल खिल सकें। लेकिन जिसको इसका बोध नहीं है उसकी जमीन व्यर्थ पडी रहती है और उसमें व्यर्थ के घास-पात उग आते हैं। गुलाब के फूलों को खिलाने के लिए सृजनात्मक श्रम करना पडता है हॉलाकि घास-पात तो स्वमेव उग आते हैं।

सुप्रसिद्ध मूर्तिकार माइकल ऐंजलो के जीवन-काल की एक घटना है। वह एक बार रास्ते से गुजर रहा था। मार्ग में उसने सगमरमर के एक पत्थर को दुकान के बाहर पड़ा हुआ देखा। उस पत्थर को देखकर वह सोचने लगा कि इस मालिक ने अपनी दुकान पर शेष सारे पत्थरों को तो बहुत अच्छी तरह से सभालकर और संजोकर रखा है सिर्फ इसी एक पत्थर को ही बाहर क्यों रखा होगा? उसने भीतर जाकर मालिक से पूछा तो मालिक ने कहा कि यह पत्थर बिलकुल बेकार है क्योकि कोई भी ग्राहक इसे खरीदने के

लिए तैयार नहीं होता।

ऐंजलो ने जब उस पत्थर को देखा था तो उसकी नजरों ने उस अनगढ़ पत्थर में छिपी प्रतिमा को भी देख लिया था। उसने तुरत मालिक से पूछा, "क्या मैं इस पत्थर को ले जा सकता हूँ?" यह सुनकर तो मालिक ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "आप तो इसे मुफ्त में ही ले जाइये। हम तो चाहते है जगह खाली हो क्योंकि पिछले दस वर्षों से यह पत्थर यहाँ पड़ा है।" मजदूरों ने उस पत्थर को ऐंजलो के घर पहुँचा दिया।

लगभग दो वर्ष के लम्बे प्रयास के बाद ऐंजलो का सपना साकार हो गया। ऐंजलो ने उस पत्थर के मालिक को मूर्ति दिखाने के लिए अपने घर आमंत्रित किया। वह मालिक तो मूर्ति देखकर दंग रह गया मूर्तियॉ तो उसने भी बहुत देखी थी किन्तु यह प्रतिमा इतनी सुंदर, विशाल और सजीव थी कि वह उसे अपलक दृष्टि से देखता ही रहा। प्रतिमा की जीवंतता को देखकर उसे भरोसा नहीं पड़ रहा था कि यह पत्थर की मूर्ति भी हो सकती है।

मालिक ने कहा, वाह माइकल ! अद्भुत है तुम्हारा कला-कौशल। धन्य है तुम्हारी सृजन-शक्ति... सच-सच बताओ कि इतना बढ़िया और बडा संगमरमर का पत्थर तुम्हें कहॉ से प्राप्त हुआ ?

ऐंजलो ने मद-मंद मुस्कराते हुए कहा, 'मित्र ! यह वही पत्थर है जो तुम्हारी दुकान के बाहर दस बर्षों से बेकार पड़ा था जिसे कोई ग्राहक लेने को तैयार नहीं था।' यह

सुनकर तो मालिक अवाक् रह गया। अंत में उठते हुए उसने कहा, "तुम ने तो इस पत्थर को इतना महिमा मंडित रुप और लावण्य दे दिया है कि यह जीवंत बन गया है।" तब ऐंजलो ने बडी महत्वपूर्ण बात कही- यदि निर्माण करने की कला हो तो अनगढ पत्थर भी सुदर मूर्ति बन सकती है।

जिस प्रकार मूर्तिकार पत्थर से मूर्ति बनाने के लिए छैनी और हथौडा लेकर उस पत्थर का व्यर्थ भाग हटा देता है तो मूर्ति स्वयं साकार हो जाती है। ठीक इसी प्रकार यह जीवन भी एक अनगढ पत्थर है। हर पत्थर में मूर्ति है सिर्फ छांटने, काटने और सवारने के लिए सृजनात्मक साधना की जरुरत है।

आज जिंदगी विकृत हो गई है जैसे शक्कर में किसी ने धूल मिला दी हो जिसे छाटना मुश्किल हो गया है। हमने व्यर्थ के साथ इतना तादात्म्य कर लिया है कि सार-असार, अर्थ-व्यर्थ, अच्छा-बुरा, शुभ-अशुभ को छांटना मुश्किल हो गया है। अक्सर जीवन के अमूल्य क्षणों को जीवन की व्यवस्थाएँ जुटाने मे ही हम गॅवा देते हैं। इसलिये ज्ञानी पुरुषों ने जीवन को Telegraphic बनाने का संदेश दिया है। जो भी व्यर्थ और अनावश्यक है उसे हटाना ही साधना है। ज्ञानी का जीवन बिलकुल Telegraphic है। वह बहुत न्यूनतम प्रयास करता है लेकिन फल उसे विराटतम मिलता है क्योकि व्यर्थ को उन्होने काट-छाट दिया है और सार्थक को संवार लिया है।

20 मानव और मन

तू कौरव तू पांड़व मनवा
तू रावण तू राम
हृदय के कुरुक्षेत्र पर है
पल-पल का संग्राम

प्रवचनांश

- जो मनन करता है वह मनुष्य है। मनुष्य का और मन का बडा गहरा संबंध है।
- मन जब बाह्य चितन में लग जाता है तो वह ससार में उलझ जाता है और यदि आत्मा के चिंतन में लग जाय तो मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।
- यदि हम मन को शत्रु मान लेंगे तो उसकी क्षमता का उपयोग नहीं होगा।
- मन को एकाग्र करना इतना कठिन नहीं है जितना कि मन को पवित्र रखना।
- सतत अभ्यास से मन साधा जा सकता है और निरंतर जागृतिपूर्ण अभ्यास हो तो मन पवित्र बनकर मोक्षगामी बन जाता है।

20 मानव और मन

मनुष्य शब्द की परिभाषा स्पष्ट करते हुए विद्वानों ने कहा- **मननात् इति मनुष्यः** अर्थात् जो मनन करता है वह मनुष्य है मनुष्य का और मन का बड़ा गहरा संबंध है। बाहर और भीतर जहॉ भी कोई पहुँचता है मन के द्वारा ही पहुँचता है। यदि हम मानव-जीवन को Factory की उपमा दें तो इस जीवन रुपी Factory के दो मुख्य अंग है। एक मालिक और दूसरा मैनेजर। यह सभी जानते हैं कि मालिक की अपेक्षा से भी मैनेजर पर ज्यादा दायित्व होता है। यदि मैनेजर कुशल संचालक एवं व्यवस्थापक हो तो मालिक को चिता नहीं रहती। जीवन की Factory का मालिक है आत्मा और मैनेजर है मन। वैसे तो मन जड़ है, अचेतन है किन्तु जब उसे आत्मा का करट मिलता है तब वह सक्रिय हो जाता है। मन सारे शरीर का नेता है और सबसे अधिक गतिशील एवं शक्तिशाली है।

मन एक ऐसा यंत्र है जिसका उपयोग दोतरफा होता है। मन मे राम भी है और रावण भी है, स्वर्ग भी है और नरक भी है। इसी मन में साधु भी है और शैतान भी है, समस्या भी है और समाधान भी है। मन मित्र भी है और शत्रु भी है। किसी शायर ने सच ही कहा है-

दिल ही की बदौलत रंज भी है
दिल ही की बदौलत राहत भी है ।
यह दुनिया जिसको कहते हैं
दोज़ख भी है जन्नत भी है ।।

इस मन के माध्यम से जैसा चिंतन किया जाता है

वैसा ही परिणाम सामने आता है। मन का स्वरुप पानी की तरह है। पानी जिस बर्तन में डाला जाता है उसी बर्तन का आकार लेता है। मन जब बाह्य चिंतन में लग जाता है तो वह संसार में उलझ जाता है और यदि आत्मा के चिंतन में लग जाय तो मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।

कुछ लोग मन को शत्रु मान लेते हैं। यदि हम मन को शत्रु मान लेंगें तो उसकी क्षमता का उपयोग नहीं होगा। जो मन को शत्रु मानते हैं। वे मन को मारने की बात कहते हैं। भगवान महावीर का संदेश है मन को मारो मत, मन को साधो। यह मन हवा जैसा चंचल है और दुष्ट घोडे जैसा दुस्साहसिक है। यदि मन एकाग्र हो जाय तो उसमें बड़ी सर्जक शक्ति पैदा होती है जबकि बिखरे मन से किया गया कार्य बरसों में भी सिद्ध नहीं होता।

गौतम बुद्ध ने अपने शिष्यो से प्रश्न किया-"चट्टान पर किसका शासन संभव है?" शिष्यों ने बताया-"भंते! चट्टान पर लोहे का शासन होता है क्योंकि वह पत्थर को टुकडे-टुकडे कर देता है।"

यह सुनकर बुद्ध ने दूसरा प्रश्न किया–"लोहे पर किसका शासन है?" शिष्यों ने कहा-"भंते! लोहे पर अग्नि शासन करती है क्योंकि अग्नि लोहे को गलाकर उसे तरल बना देती है।"

बुद्ध ने तीसरा प्रश्न किया-"अग्नि पर किसका शासन है?" सभी शिष्यों ने एक ही स्वर मे कहा-"भते! अग्नि पर जल शासन करता है जो उसे बुझा देता है।"

आगे चौथा प्रश्न पूछा-"जल के ऊपर किसका शासन है? तब शिष्यों ने कहा-भते! जल पर वायु शासन करती है क्योंकि जब वायु तूफान के रुप में आती है तब वह जल

को नचाती है।"

गौतम बुद्ध ने अंतिम प्रश्न किया-"वायु पर किसका शासन है? शिष्यों ने कहा-"भंते! वायु पर एकाग्र मन का शासन है।"

मन एकाग्र हो तो श्वांस भी स्थिर हो जाता है और ऐसा एकाग्र मन सूक्ष्म होकर भीतर तक पहुँच सकता है। वैसे पृथ्वी की प्रत्येक वस्तु अपने आप में शक्तिमान है किन्तु उन सब मे यदि कोई सबसे अधिक शक्तिशाली है तो वह है 'मन'। जैसे सूर्य की किरणों में अग्नि तत्व है वे किरणें किसी वस्तु को जला भी सकती हैं किन्तु कब? जब उसकी किरणों को विशिष्ट यंत्र की सहायता से केन्द्रित कर किसी वस्तु की ओर प्रक्षिप्त किया जायेगा अन्यथा सूर्य की किरणें यूँ ही बिखरी-बिखरी रहें तो किसी भी वस्तु को जला नहीं पायेगी। जैसे जल-वाष्प में शक्ति है कि वह हजारों टन वजन को खींच सकती है किन्तु कब? जब उसे किसी विशिष्ट यंत्र मे केन्द्रित किया जाय। इसी प्रकार मन मे भी अनंत शक्ति हैं और उस अनत शक्ति को केन्द्रित किया जाय तो मुक्ति तक पहुँचा जा सकता है अन्यथा यह शक्ति व्यर्थ चली जायेगी।

योगशास्त्र मे आचार्य हेमचन्द्र ने मन की चार दशाएँ बताई है। मन की पहली दशा है विक्षिप्त दशा जिसमे व्यक्ति पागल की तरह भटकता है। यह ऐसी मोहमूढित अवस्था है जिसमे विचारो का कोई ओर-छोर ही नही रहता। वैसे विक्षिप्त पागल को भी कहते हैं। पागल आदमी किसी एक विचार, निश्चय, संकल्प पर स्थिर नहीं रह सकता। वह एक क्षण पहले कुछ सोचता है क्षण भर बाद उस विचार से बिलकुल उलटे विचार करता है। इसी प्रकार विक्षिप्त चित्तवाला व्यक्ति पागल-सा, उद्विग्न, बहमी, झक्की या सनकी हो जाता है।

जैसे किसी तालाब या नदी के शात पानी में पत्थर डाला जाय तो वह पानी क्षुब्ध या चंचल हो उठता है। उसमें एक साथ कई लहरें उठती हैं, उस पानी में कोई यदि अपनी प्रतिबिंब देखना चाहे तो नही देख सकता। इसी प्रकार चित्त रुपी शात सरोवर में कोई व्यक्ति क्रोध, लोभादि विकारों के पत्थर फेंके तो वह भी क्षुब्ध या चंचल हो उठता है। उसमें भी विकृति युक्त विचारों की असख्य तरंगे उठती है। इस प्रकार चंचल तरंग युक्त चित्त में कोई अपने आत्म स्वरुप का प्रतिबिंब देखना चाहे या अपने अभीष्ट कार्य का ठीक चिंतन करना चाहे तो कभी नहीं कर सकता। ऐसा चित्त विक्षिप्त-चित्त है जिसमें एकाग्रता और शांति से, निराकुल एवं संतुलित होकर कोई भी चिंतन नहीं किया जा सकता।

मन की दूसरी दशा है यातायात दशा जहॉ मन गति तो करता है लेकिन उसकी गति दिशाहीन होती है इसमें मन मधुमक्खियों के छेड़े गए छत्ते की तरह बार-बार कल्पनाएँ करता है। उसके हर कार्य में अधुरापन रहता है। ऐसे मनवाला व्यक्ति एक चीज से दूसरी चीज पर उछलता है। एक राजस्थानी कहावत है- **आधी छोड़ सारी को धावै, आधी रहे न सारी पावै।**

एक युवक ने जिंदगी के 25 वर्ष पढने में बीता दिये। उसने देखा कि दुनिया मे धन का बडा महत्व है, यहॉ सिर्फ अमीरो की पूजा होती है। अत. उसने अमीर बनने की फिराक में जीवन की सारी ऊर्जा को लगा दिया। धीरे-धीरे उसके कदम उस दिशा में जमने लगे। इस तरह उसके जीवन के पद्रह वर्ष बीत गये।

एक बार वह किसी महफिल मे चला गया और वहॉ उसने देखा कि अमीरों से भी ज्यादा सम्मान सगीतज्ञ पाता

हैं। उसके यातायात मन ने दिशा बदली और जीवन के दस वर्ष उसने संगीत कला सीखने में लगा दिये। संगीत की महफिलों में उसने देखा कि संगीतज्ञ से भी ज्यादा आदर और प्रियता नेताओं को मिलती है। अब जीवन के 51 वे वर्ष में उसने नेताओं के पीछे घूमना प्रारंभ कर दिया किन्तु नेता बनना कहाँ आसान था? इस तरह भाषण और राजनीति के क्षेत्र में उसने दस वर्ष बितायें। एक बार वह किसी राजनेता के साथ कहीं भाषण देने गया तो वहाँ उसने देखा कि लोगों का आकर्षण बिन्दु अभिनेता है। उसके चचल मन ने फौरन कहा कि जीवन की सार्थकता तो अभिनेता बनने में है। अब मुश्किल यह थी कि साठ वर्ष का बूढा अभिनेता कैसे बनेगा? वह स्वयं को एक दिशा में स्थिर नहीं कर सका। उसका जीवन यू ही व्यर्थ चला गया।

मन की तीसरी दशा है श्लिष्ट दशा जहाँ मन थोडे समय तक स्थिर रहता है किन्तु वह सिर्फ बाह्य विषयो में ही स्थिर रह पाता है। शुभ और पवित्रता के कार्यों मे वह चंचल बन जाता है। सभी संसार के प्राणी इसी दशा में जीते हैं। उनका मन सिनेमाघरो मे तो स्थिर हो जाता है किन्तु भगवान की भक्ति करते समय बडा चचल हो जाता है।

मन की चौथी दशा है सुलीन दशा जहाँ मन शुभ मे ठहरता है और धीरे-धीरे शुद्धता की ओर बढता जाता है। मन को एकाग्र करना इतना कठिन नही है जितना कि मन को पवित्र रखना। तन शुद्धि की ओर तो हमारा बहुत ध्यान है किन्तु मनशुद्धि की तरफ बिलकुल नही है। सतत अभ्यास से मन साधा जा सकता है और निरतर जागृतिपूर्ण अभ्यास हो तो मन पवित्र बनकर मोक्षगामी बन जाता है।

21 झुकना ही पाना है

सास का प्यार ही बहु की सेवा पा सकता है
स्वयं का आचार ही स्वयं को उठा सकता है
आप बोलते हैं तो रेडियो भी बोलता है
आप का झुकना ही किसी को झुका सकता है

प्रवचनांश

- झुकने का मतलब मात्र सिर को झुकाना नहीं है अंतस् का झुकना ही वस्तुतः झुकना कहलाता है।
- जो विनम्र है वह तो रुई की तरह हल्का हो जाता है, उसे कोई काट नहीं सकता।
- जो शक्ति झुकने से हासिल होती है वह धन से, राजनीति से अथवा पद–प्रतिष्ठा से कभी भी प्राप्त नहीं हो सकती।
- यह एक गहनतम तथ्य है कि हम जीवन मे जितना झुकेगे उतने ही जीवत हो सकेगे।
- जब हम झुकते है, विनम्र बनते हैं तब सारा अस्तित्व हमारे साथ होता है।

21 झुकना ही पाना है

कोई फूल कितना ही सुंदर और कोमल क्यों न हो किन्तु उसमे सुगंध नहीं है तो व्यर्थ माना जायेगा। एक मकान चाहे कितना ही विशाल एवं आकर्षक क्यों न हो यदि वह मनुष्य से रहित है तो खंडहर समझा जायेगा। ठीक इसी प्रकार मनुष्य के जीवन में कितने ही गुण क्यों न हो किन्तु उसमें विनय या नम्रता नहीं है तो वह जीवन की पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता। आश्चर्य और दुःख की बात तो यह है कि मनुष्य फूल तो सुगंधवाला ही पसंद करता है, मकान तो स्वयं के रहने के लिए ही बनाता है किन्तु जीवन में नम्रता को स्थान नहीं दे पाता। कहा भी है-

वह वीणा, वीणा ही क्या जिसमें मधुर झंकार नहीं
वह पायल, पायल ही क्या जिसमें मधुर गुंजार नहीं ।
वह मंजिल, मंजिल ही क्या जिसमें उपलब्धि का संकेत नहीं
वह मानव, मानव ही क्या जिसमें झुकने के संस्कार नहीं ।।

झुकना एक ऐसी कीमिया हैं जिससे हृदय के द्वार खुल जाते हैं। झुकना का मतलब मात्र सिर को झुकाना नही है। जीवन का लक्षण ही झुकना है। एक छोटा बच्चा जो इतना लोचपूर्ण होता है कि वह जैसा चाहे और जितनी बार चाहे अपने आपको झुका लेता है लेकिन बूढा आदमी सख्त हो जाता है। वस्तुत: जहाँ जितनी झुकने की क्षमता है उतनी ही जीवंतता होती है।

यदि कोई बगीचे में जाकर माली से पूछे तो वह भी

यही कहेगा कि यदि वृक्ष को झुकना हो या कोई आकार-विशेष देना हो तो तभी दिया जा सकता है जब पौधा छोटा हो और लोचपूर्ण हो। जब पौधा सख्त हो जायेगा फिर उसे झुकाने का प्रयत्न करोगे तो उसकी शाखाएँ टूट जायेगी। जहॉ कठोरता है वहॉ स्थायित्व नहीं रहता और जहॉ नम्रता है वहाँ टिकाव है। जो विनम्र है वह तो रुई की तरह हल्का हो जाता है उसे कोई काट नहीं सकता। उसका अस्तित्व कायम रहता है। कठोरता का अस्तित्व दीर्घकाल तक नहीं रहता।

सागर और सरिता का एक बडा मधुर संवाद है। एक दिन सागर ने वेत्रवती सरिता से कहा- "हे वेत्रवती ! मैं समस्त नदियों के मधुर व्यवहार से बहुत संतुष्ट हूँ। सभी सरिताएँ उपहार स्वरुप कुछ न कुछ लाकर मुझे देती हैं। तू एक ही ऐसी अविनीत और कंजूस है कि अभी तक तूने अपने प्रवाह के साथ कुछ भी लाकर नहीं दिया।"

यह सुनकर वेत्रवती सरिता ने कहा- "हे रत्नाकर ! आप ही बताइए कि इसमें मेरा क्या अपराध है?"

सागर ने कहा- "हे वेत्रवती! तेरे किनारे पर बेंत के बहुत झाड हैं परंतु आज तक तूने अपने प्रवाह में कभी एक भी बेत का टुकड़ा लाकर मुझे नहीं दिया।"

वेत्रवती ने शीघ्र कहा- "हे रत्नाकर ! इसमे मेरा क्या कसूर होगा, जब मैं वेगपूर्वक आती हूँ तब सारे बेंत के झाड़ नीचे झुककर पृथ्वी के साथ लग जाते है। जब मेरा प्रवाह कम हो जाता है तब वे फिर ज्यों के त्यों खडे हो जाते

हैं।" वस्तुतः झुकने में बहुत बडी शक्ति है। जो झुकना जानता है वह कभी पराजित नहीं हो सकता।"

जीवन का यह परम नियम है कि झुककर ही इन्सान आगे बढ़ता है। झुकने से अभिप्राय दबकर चलना या डरकर रहना नहीं है। जैसे डाली पर फल लगता है तो वह स्वतः झुक जाती है। फल को तोड़ लेने के बाद वह डाली फिर ऊपर चाली जाती है। कुएँ में रहा घडा जब तक झुकेगा नही तब तक पानी घडे के चारों ओर होते हुए भी भीतर नही आ सकेगा। दुनिया में यदि कुछ पाना हो तो झुकना पडेगा, नम्र होना पडेगा क्योंकि नम्रता ही महानता का लक्षण। John Ruskin ने भी कहा है- **"मेरा विश्वास है कि महान पुरुष की पहली पहचान उसकी नम्रता है।"** नम्रता रहित महानता तो खजूर के वृक्ष के समान होती है। जैसा कि एक दोहे में कहा गया है-

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।

महाभारत का युद्ध प्रारंभ होने से पहले जब दोनो पक्षों की सेनाएँ एक-दूसरे के आमने-सामने खडी थी। उस समय धर्मराज युधिष्ठिर अपने रथ से उतरे और पैदल चलकर कौरवों की सेना की तरफ आये। जब धर्मराज युधिष्ठिर को भीष्म पितामह, गुरू द्रोणाचार्य और कुलगुरू कृपाचार्य ने अपनी और आते देखा तो तीनों ही रथ से नीचे उतरे।

धर्मराज ने क्रमशः उनके चरण स्पर्श किये और युद्ध की अनुमति और आशीर्वाद मांगा। तीनो ने ही उन्हें 'विजयी

भव' कह कर युद्ध में विजय प्राप्त होने का आशीर्वाद दिया। धर्मराज जब लौट गए तब दुर्योधन गरजा-"पितामह! प्रधान सेनापति तो आप हमारे हैं और विजयी होने का आशीर्वाद आप युधिष्ठिर को दे रहे हैं ?"

इससे पूर्व कि दुर्योधन कुछ और कह पाता पितामह बोले- "दुर्योधन! यह तो सृष्टि का नियम है जो 'झुकेगा वही पायेगा'। जब काई व्यक्ति किसी के चरण-स्पर्श करता है तो आशीर्वाद का हाथ बगैर किसी अनुमति के स्वयमेव ही ऊपर उठ जाता है। यदि तुम भी अपने अग्रज धर्मराज युधिष्ठिर के चरण-स्पर्श करते तो वह भी तुम्हें विजयी होने का आशीर्वाद अवश्य देता। परन्तु तुम्हारे दंभ ने तुम्हें ऐसा करने नहीं दिया।" कहा भी है-

बड़ों को प्रणाम करना छोटों की महानता है
छोटों का सम्मान करना बड़ों उदारता है ।
एक विनम्रता है और एक वत्सलता है
अपने-अपने स्थान पर दोनों की प्रधानता है ।।

जो शक्ति झुकने से हासिल होती है वह धन से, राजनीति से अथवा पद-प्रतिष्ठा से कभी भी प्राप्त नहीं हो सकती। जितना किसीके पास धन होगा उतनी ही उसकी आत्मा सिकुड़ जायेगी या पथरीली हो जायेगी और जितने बड़े पद पर पहुँचोगे उतनी ही भावनाएँ कठोर हो जायेगी। बेईमानी, धोखाधड़ी, पाखड, झूठ-फरेब आदि करके ही ऊँचे पद मिलने की संभावना है। यह एक गहनतम तथ्य है कि हम जीवन में जितना झुकेगे उतने ही जीवंत हो सकेगे। जब हम झुकते

हैं, विनम्र बनते हैं तब सारा अस्तित्व हमारे साथ होता है।

एक पेड़ के तने ने शाखा से कहा कि इस वृक्ष के जड़ का अस्तित्व ही क्या है ? वह तो सदा अंधेरे में रहती है, जमीन में मुँह गड़ाएँ पडी रहती है। लेकिन मैं तो जमीन से ऊपर हूँ और विकसित भी होता हूँ। तने की यह बात सुनकर शाखा ने कहा- "तुम किस बात पर तन रहे हो, तुम तो एक ही स्थान पर रहकर फैलते जा रहे हो। हम तो हर एक दिशा में फैलती है जिससे वृक्ष को सुंदर आकार मिलता है।"

यह सुनकर पत्तियों ने कहा- "शाखाएँ कितनी ही झूम लें पर क्या वे कभी एक शब्द भी बोली है? हम तो मधुर ध्वनि करते हैं और पथिक को शीतलता भी देते हैं।"

फूलों ने कहा- तुम तो शाखाओं के बल पर ही नाचते हो लकिन हम तो अपने से खिलते हैं खुलते हैं और सुंगध फैलाते हैं।" इन सबकी बातें सुनकर जड़ मुस्काराई और कहने लगी- जो विनम्र होते है वह अपना बडप्पन स्वयं नही कहता।" इसी बात को पुष्ट करते हुए कवि रहीम ने कहा है-

बड़े बड़ाई ना करें, बड़े न बोले बोल।
हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल।।

22 जीवन पराग

नहीं वह जिंदगी जिसको जहाँ नफरत से ठुकराए
नहीं वह जिंदगी जो मौत के कदमों पे झुक जाए
वही है जिंदगी जो नाम पाती है भलाई में
खुदी को छोड़कर के पहुँच जाती है खुदाई में

प्रवचनांश

- प्रत्येक आत्मा को आत्मवत् अनुभव करना सेवा और मानवता का बीज-मंत्र है।
- सेवा का अर्थ है- किसी की पीड़ा को दूर करने में सहायक होना, किसी को खुशी देना।
- सेवा धर्म अपनाने से जितना दूसरों का भला होता है उससे कई गुना अधिक भला स्वयं का होता है क्योंकि सेवा करनेवाला दूसरों की नही अपितु स्वयं की सेवा कर रहा है।
- दूसरों की पीड़ा को जो अपनी पीड़ा समझता है वही सेवा कर सकता है।
- सेवा का सीधा सम्बन्ध दया से, करुणा से, मानवता से और सहृदयता से है।

22 जीवन पराग

अपना पेट तो पशु भी भर लेते हैं किन्तु मनुष्य वह है जो दूसरों की आवश्यकतायें भी अनुभव करें; उन्हें अपनी आवश्यकतायें मानें और उनकी पूर्ति के लिए समय-समय पर जागृत रहें। प्रत्येक आत्मा को आत्मवत् अनुभव करना सेवा और मानवता का बीज-मंत्र है। मनुष्य की संवेदनशीलता, करुणा, उदारता और जरुरत पड़ने पर दूसरों के काम आ सकने की क्षमता के कारण ही मनुष्य को महान् कहा गया है। कहा भी है-

यही पशु प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे ।
मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिए मरे ।।

प्रभु महावीर से एक बार जिज्ञासा व्यक्त की गई- **वेयावच्चेणं भंते! जीवे किं जणयइ ?** अर्थात् हे भगवन्! सेवा करने से आत्मा को क्या प्राप्त होता है ?

तब भगवान् ने इस जिज्ञासा का समाधान देते हुए कहा- **वेयावच्चेणं तित्थयर नामगोत्तं कम्मं निबंधई** अर्थात् सेवा से तीर्थंकर गोत्र का बंध होता है। किसी भी मनुष्य के लिए इससे बढकर और क्या उपलब्धि हो सकती है। सेवा से वह मिल जाता है जिसके बाद कुछ भी असंभव और अप्राप्य नहीं रह जाता।

सेवा का अर्थ है- किसी की पीड़ा को दूर करने में सहायक होना, किसी को खुशी देना। यह सब का अनुभव

है कि यदि कोई किसी रोगी की सेवा करता है तो उस रोगी की पीड़ा कुछ कम हो जाती है। आपके बच्चे, आपके माता-पिता और सगे-सम्बन्धी आपको इसीलिए चाहते है कि आप उनकी पीड़ायें दूर करने में सहायक होते हो। अन्यथा तो आपके जीने और मरने से किसी को कोई फर्क नहीं पडेगा। दुनिया में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो केवल अपनों के लिये जीते हैं या अपनों की ही सेवा करना चाहते हैं। यह सेवा, सेवा नही है क्योंकि सेवा का सम्बन्ध स्वार्थ और मोह से नहीं होता। सेवा का सीधा सम्बन्ध दया से, करुणा से, मानवता से और ह्रदयता से है।

सेवा धर्म अपनाने से जितना दूसरों का भला होता है उससे कई गुना अधिक भला स्वयं का होता है क्योंकि सेवा करनेवाला दूसरों की नहीं अपितु स्वयं की सेवा कर रहा है। सेवा से पवित्रता, सह्रदयता और सरलता की प्राप्ति होती है।

गौतम बुद्ध से एक बार उनके शिष्य आनंद ने प्रश्न किया- "भगवन् ! दो व्यक्ति ऐसे हैं जिनमें से एक तो आपकी दिन-रात सेवा करता है। आपके नाम की माला, जाप और स्तुति करता है और आपकी वाणी सुनने में ही संलग्न रहता है। उसके आसपास कई लोग दुःखी है, निराश्रित है। उसमें सामर्थ्य है कि वह उनकी मदद कर सकता है किन्तु उसका समय आपकी सेवा में ही निकल जाता है। अतः वह जरुरतमंदों की सेवा नहीं कर पाता। दूसरा व्यक्ति ऐसा है जिसकी आप पर अगाध श्रद्धा होने पर भी वह दीन-दुखियों की सेवा में लीन रहता है अतः वह आपकी सेवा भी नहीं कर पाता।

उसके पास इतना भी समय नहीं कि वह आपके दर्शन कर सके। भगवन् ! इन दोनों में से आपका सच्चा भक्त कौनसा है ? आप किसे श्रेष्ठता देंगे?"

बुद्ध ने कहा- "इन दोनों में दूसरा व्यक्ति ही श्रेष्ठ कहा जायेगा। मेरी सच्ची सेवा तो मेरे आज्ञा पालन में है, अनुशासन मानने में है। जो दु:खी की आवाज सुनता है वही मेरी वाणी सुनता है। जो उनको करुणाभरी नजर से देखता है वही मेरे दर्शन करता है।"

सेवा करने वाले का हृदय विशाल और व्यक्तित्व महान् होता है। उसकी दृष्टि अपने तक ही सीमित नहीं होती। उसकी संवेदनाएँ दूर-दूर तक जाती है। सेवा से अपना जीवन भी मधुर बनता है और दूसरों का भी; दूसरों की पीड़ा को जो अपनी पीडा समझता है वही सेवा कर सकता है।

एक राजा जो अत्यन्त न्यायप्रिय, प्रजावत्सल एवं धर्मात्मा था। उसके चार पुत्र थे जिनकी योग्यता का वह सदा सम्मान करता था। एक बार राजा ने उनकी योग्यता की परीक्षा हेतु एक सुबह उन चारों को बुलाकर कहा- "मैं आज तुम्हें एक कार्य सौंप रहा हूँ जिसे करना तुम सबके लिए बहुत जरुरी है। कार्य यह है कि किसी एक धर्मात्मा को बुलाकर राजमहल में लाना है। जो सबसे बडे धर्मात्मा को लायेगा उसी को राजसिहासन पर बिठाया जायेगा।

पिता की आज्ञा पालन करने हेतु चारो चल पडे। कुछ दिनो के बाद बडा बेटा अपने साथ एक दानवीर सेठ को लेकर राजमहल पहुँचा। राजा के समक्ष उपस्थित होकर उसने

कहा- पिताजी! ये सेठ जी सच्चे धर्मात्मा है। इन्होंने अपनी छोटी सी जिंदगी में अनेक मंदिर बनवाए, तालाब और कुएँ खुदवाएं, अनेक धर्मशालाओं का निर्माण करवाया तथा ये साधु-संतों को बडे सम्मान के साथ भोजन करवाते हैं।" सारी बातें सुनने के पश्चात् राजा ने सेठ का सत्कार किया और सेठ विदा हो गये।

कुछ दिनों के बाद दूसरा बेटा अपने साथ एक दुबले-पतले ब्राह्मण को लेकर राजमहल पहुँचा। राजा के सामने ब्राह्मण को उपस्थित करके वह बोला- "पिताजी ! इन्होंने चारों धामों की और सातो पुरियों की पैदल यात्रा की है। खूब ज्ञानार्जन किया है तथा जीवन भर झूठ नहीं बोलने का इनका नियम है। मेरी नजरों में इनसे बढ़कर और कोई सच्चा धर्मात्मा नहीं हो सकता।" यह सब सुनने के बाद राजा ने पडित को दक्षिणा देकर विदा किया।

थोड़े दिनों के बाद तीसरा राजकुमार अपने साथ एक ध्यान योगी को लेकर पिता के सामने जा पहुँचा और बोला- पिताजी ! ये बडे तपस्वी है जो सात दिन में सिर्फ एक बार भोजन करते है और पंचाग्नि तप भी तपते है। सर्दियों में शीतल जल में खड़े रहते हैं।

ऐसे कष्ट-सहिष्णु धर्मात्मा और कहाँ मिल सकते हैं?" राजा ने उनका स्वागत किया और वे प्रस्थान कर गये।

एक दिन चौथा राजकुमार अपने साथ मैले-कुचैले कपडे पहने एक देहाती को लाया और बोला- "पिताजी ! ये धर्मात्मा है या नहीं इसे मैं नहीं जानता किन्तु एक घायल कुत्ते के

घाव की बड़ी तन्मयता के साथ सेवा करते हुए मैंने इनको देखा था।"

राजा ने उस देहाती से पूछा- "भाई! कुछ धर्म करते हो? वह बोला मैं अनपढ़ हूँ, धरम-करम क्या होता है मैं नहीं जानता। हॉ, कोई बीमार है तो उसकी सेवा मैं करना चाहता हूँ। जिसे भोजन की जरुरत है उसे भोजन देता हूँ।" राजा ने कहा- "यही सबसे बड़ा धर्मात्मा है क्योंकि सर्वश्रेष्ठ धर्म है- सेवा करना।"

किसी चिंतक ने कहा है जब तक जीवन-पुष्प में निःस्वार्थ सेवा का पराग नही होगा तब तक यह जीवन-पुष्प मूल्यहीन, परागहीन और अनुपयोगी बना रहेगा। इस संदर्भ में एक शायरी श्रोतव्य है-

जिंदगी की रस्म है जिये जाइये
गमजदा दिलों पर मरहम लगाइये ।
दूसरों को जिलाने में फनाकर जिंदगी
जिंदगी के बाग में जिंदगी महकाइये ।।

23 भाग्य और पुरुषार्थ

शम्मा बुझ जाय तो जल सकती है
किश्ती हर तूफान से निकल सकती है
मायूस न हो अपने इरादे न बदल
किस्मत किसी वक्त भी बदल सकती है

प्रवचनांश

- किसी भी व्यक्ति का भाग्य उसका पुरुषार्थ ही गढता है अतः व्यक्ति का भविष्य उसके अपने हाथ में है।
- पुरुषार्थ भाग्य का प्राथमिक रुप है और नियति उसका अंतिम समाधान है।
- जैनदर्शन पुरुषार्थवादी दर्शन है। पुरुषार्थ से सभी शक्तियों के केन्द्र सक्रिय होते है।
- पुरुषार्थ से कदाचित् कार्य सिद्ध हो या ना हो किन्तु पुरुषार्थ कभी निष्फल नही होता। जैसे कोई व्यक्ति बगीचे में फल लेने गया। उसे वहाँ फल ना भी मिले तो अनेक पुष्पों की सुगंध एवं स्वास्थ्यवर्धक हवा का लाभ तो उसे अवश्य मिलेगा।

23 भाग्य और पुरुषार्थ

जीवन रुपी रस्सी के दो छोर हैं- भाग्य और पुरुषार्थ। कहते हैं जीवन का कुछ भाग अस्थिर होता है तथा कुछ स्थिर। स्थिर भाग को भाग्य या प्रारब्ध कहा जाता है तथा अस्थिर भाग को पुरुषार्थ कहते हैं। जैसे रेलगाड़ी पटरी को छोड़कर इधर-उधर नहीं जा सकती अतः पटरी उसका प्रारब्ध है लेकिन चलने में वह स्वतंत्र है, यह उसका पुरुषार्थ है।

इस संसार में हर आदमी विष और अमृत पीने मे जितना स्वतंत्र है उतना उसके परिणाम भुगतने में स्वतंत्र नहीं है। पेड पर चढने में व्यक्ति स्वतंत्र है किन्तु गिर जाय, चोट लग जाय तो वह परिणाम उसे भुगतना ही पडता है। किसी भी व्यक्ति का भाग्य उसका पुरुषार्थ ही गढता है अतः व्यक्ति का भविष्य उसके अपने हाथ में है। किसी चिंतक ने कहा है- "इरादें की मजबूती का नाम तकदीर है। स्वयं के सुंदर भविष्य का निर्माण करने के लिए हमें अपने विचारों पर अधिकार पाना चाहिए। क्योंकि जो विचार एक बार मस्तिष्क में उपजता है वह अपना सस्कार छोड जाता है। विचार अच्छे भी होते हैं और बुरे भी होते है। अच्छे संस्कार हमें ऊपर उठाते है और बुरे संस्कार नीचे ले जाते हैं।"

किसी भी चीज का अत तो तब आयेगा जब उसकी आदि होगी। आदि है पुरुषार्थ, उद्यम और प्रयत्न करना। पुरुषार्थ भाग्य का प्राथमिक रुप है और नियति उसका अंतिम समाधान है। किसी ने कहा भी है- **पूर्वजन्मं कृतं कर्म तद् दैवमित्युच्यते** अर्थात् पूर्वजन्म में जो पुरुषार्थ किया है वही आज तक का भाग्य है और जो आज का पुरुषार्थ है वह कल का भाग्य होगा। भाग्य

का प्रारंभ पुरुषार्थ है और पुरुषार्थ का अंत भाग्य है। पुरुषार्थ से भाग्य का निर्माण होता है और भाग्य पुरुषार्थ को प्रेरित करता है। पुरुषार्थ करने में प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है। नियति पुरुषार्थ में कोई बाधा नहीं डालती और पुरुषार्थ नियति में कोई बाधा नहीं डालता। दोंनों एक दूसरे के पूरक हैं किन्तु बाधक नहीं है।

जैन दर्शन पुरुषार्थवादी दर्शन है। पुरुषार्थ से हम अपने भाग्य को भी बदलते हैं और अपनी स्थिति को भी बदल सकते हैं। एक फ्रांसीसी लोकोक्ति बड़ी प्रसिद्ध है-

Diligence is the mother of good luck

अर्थात् परिश्रमशीलता सौभाग्य की जननी है। पुरुषार्थ से सभी शक्तियों के केन्द्र सक्रिय होते हैं। मिट्टी में सोना रहा हुआ है और सीप में मोती छिपे हैं लेकिन बिना पुरुषार्थ के कुछ भी संभव नहीं हो सकता। पुरुषार्थ से ही व्यक्ति इस योग्य बनता है कि अपने विकास के द्वारों को खोल सकें। इसलिए कहते हैं- जो स्वयं पुरुषार्थ करना ही नहीं चाहता उसे कोई दैवी शक्ति भी कभी मदद नहीं कर सकती।

एक व्यक्ति को चोरी करने की घृणित आदत पड गई। कहा जाता है कि कोई भी चोर अपने आपको कितना ही चतुर क्यो न समझे किन्तु एक दिन वह सिपाहियो के द्वारा पकडा ही जाता है। एक दिन, सिपाहियों ने उस चोर को पकडने के लिए उसका पीछा किया। चोर अपना बचाव करने के लिए पूरी शक्ति लगाकर भाग रहा था। इस तरह चोर और राजपुरुषों के मध्य दौड की प्रतियोगिता-सी हो गई।

प्राण बचाने के लिए चोर गाव के बाहर एक मदिर मे पहुँचा। उसने करुणापूर्ण स्वर में देवी माँ स्वरक्षा की प्रार्थना की। चोर का कातर स्वर एवं विनम्र वाणी को सुनकर देवी

का कोमल हृदय द्रवित हो गया। देवी ने कहा- "तुम घबराओ नहीं, राजपुरुषों का दृढ़ता से सामना करो;मैं तुम्हारे साथ हूँ।"

सामना करने की बात सुनकर चोर का शरीर कांपने लगा। वह बोला- "माँ ! यदि मुझ में सामना करने का सामर्थ्य होता तो मै तुम्हारी शरण में क्यो आता ? अत. अब मेरी रक्षा करना आपके ही हाथ में है।"

यह सुनकर देवी ने कहा- "यदि तुम सामना करने में असमर्थ हो तो ऐसा करो अपनी पूरी शक्ति लगाकर चिल्लाओ ताकि राजपुरुष लौट जायेंगे।"

तब चारे ने कहा- "माँ ! भय के कारण मेरा गला रुध गया है और मेरी वाक्शक्ति भी समाप्त हो गई है तो मै कैसे चिल्लाऊॅ ?" अब देवी ने कहा तुम मदिर का द्वार बद करके निश्चिन्त होकर सो जाओ ताकि द्वार बंद देखकर राजपुरुष स्वत लौट जायेगे।

घबराते हुए स्वर में चोर बोला- "माँ ! मेरे हाथ सठिया गये है जिसके कारण मेरे भीतर की सारी शक्ति समाप्त हो गई है अत द्वार बद करुँ तो कैसे करुँ ?"

देवी का रुप जगदम्बा का होता है। उसके हृदय मे करुणा की सरिता बह रही थी इसलिए वह चोर को बचाना चाह रही थी अत इस बार देवी ने कहा- "तुम मेरी प्रतिमा के पीछे बैठ जाओ फिर कोई भी तुम्हारा बाल बॉका नही कर सकेगा।"

यह सुनकर चोर ने कहा- "माँ ! तुम सच कह रही हो किन्तु मेरे पैर धरती से चिपक गये है अत एक कदम भी चलना मेरे बस की बात नहीं है। इस भयभीत अवस्था मे मै कुछ भी [illegible] मे सक्षम नही हूँ।"

इतना सुनते ही देवी रुष्ट हो गई और कहने लगी- "कापुरुष! तुम जैसे सत्वहीन, कायर और अकर्मण्य पुरुष को मैं सहयोग नहीं दे सकती। तुम्हें अपने कर्मों का फल भुगतना ही पड़ेगा।"

सभी चुनौतियाँ पुरुषार्थ से सिद्ध होती है। जीवन में जो भी श्रेष्ठ और बहुमूल्य है वह बिना पुरुषार्थ के नहीं मिल सकता। भाग्य मनुष्य के जीवन को बदले या न बदले लेकिन पुरुषार्थ निश्चय ही भाग्य को भी बदलता है। शर्त मात्र इतनी है कि पुरुषार्थ सोच-समझकर सही रुप में और ठीक समय पर किया जाना चाहिए। इसलिये तुर्की के एक विद्वान् ने लिखा है-

A man does not seek his luck; luck seeks its man

अर्थात् मनुष्य अपने भाग्य को नहीं ढूँढता भाग्य उसे ढूँढ लेता है।

उपलब्धि चाहे आध्यात्मिक हो या लौकिक किन्तु पुरुषार्थ जरुरी है। चींटी यह कहकर अपनी चाल नहीं रोकती कि मैं हाथी की बराबरी नहीं कर सकती। पुरुषार्थ करती हुई वह पहाड पर चढ जाती है। स्व-पुरुषार्थ से ही उत्थान का मार्ग खुलता है। पुरुषार्थ से कदाचित् कार्य सिद्ध हो या ना हो किन्तु पुरुषार्थ कभी निष्फल नहीं होता।

कल्पना करे कि कोई व्यक्ति बगीचे में फल लेने गया। वहाँ यदि उसे फल नहीं भी मिले तो अनेक पुष्पों की सुगंध एव स्वास्थ्यवर्धक हवा का लाभ तो उसे अवश्य ही मिलेगा। इसलिए कहा है- निरंतर श्रम के आराधक बनो और प्रगतिशील दृष्टिकोण रखो। इसे जीवन का मूल-मत्र बनाओ-

रुको मत... चलते रहो ।
बुझो मत... जलते रहो ।।

24 जीवन है एक मंदिर

बात अंधेरों की नहीं उजालों की करनी होगी
चर्चा काँटों की नहीं गुलाबों की करनी होगी
मोड़ दिया है जिंदगी को जिसने भी..
दृष्टि चील की नहीं हँस की करनी होगी

प्रवचनांश

- जीवन–मंदिर को सद्‌गुणों से सजाने के लिए गुणानुराग और गुणान्वेषण की प्रवृत्ति जरुरी है।
- जिसमें गुण भी है और अवगुण भी है वह मनुष्य है, चूँकि मनुष्य में दोनों तत्व है अतः गुणग्राही दृष्टि की अपेक्षा है।
- गुण और गुणग्राही का आपस मे एक घनिष्ठ सबंध होता है। हजार कोस दूरी पर रहा हुआ गुणग्राही गुणों को अपने प्रति खींच लेता है।
- सब कुछ मनुष्य की क्षमता, दृष्टि और प्यास पर आधारित है।
- यहाँ कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है जिसमें गुण ना हो सिर्फ देखनेवाली नजर की कमी हो सकती है।

24 जीवन है एक मंदिर

जीवन के सत्य का दिग्दर्शन कराते हुए शायर ने लिखा है-

वैसे तो यह जिंदगी बहुत खूबसूरत है
इसे जरा ठीक से समझने की जरुरत है ।
यदि नहीं समझे तो यह शैतान का घर है
और समझ गये तो ये भगवान की मूरत है ।।

जिसने भी जीवन को जाना, समझा और परखा उसने अपने जीवन को मंदिर बना लिया। मंदिर वह है जहाँ मनुष्य अपने अंतस् के पवित्र भावों को अर्चना के रुप में अभिव्यक्त करता है और आत्मशांति को प्राप्त करता है। यह जीवन भी वास्तव में एक मंदिर है। मंदिर की उपादेयता इसी में है कि दोषों को हटाना और पवित्रता को स्थापित करना। जैसे पत्थर को तराश कर प्रतिमा का निर्माण किया जा सकता है वैसे ही जीवन को भी सद्गुणों से सजाकर भीतर रही हुई परमात्मा की मूरत को प्राप्त किया जा सकता है।

गुलदस्ता फूलों से भरा होने पर सुंदर व नयनाभिराम लगता है किन्तु यदि उसमें कॉटे भरे हों तो वह किसी को भी अच्छा नहीं लगेगा। यही बात जीवन के विषय में भी है। यदि जीवन सद्गुणरुपी सुगंधित फूलों से भरा हो तो वह सुंदर, मोहक और सुहावना लगता है। यदि जीवन दुगुर्णरुपी काँटो से भरा हो तो ऐसा जीवन किसी को भी आकर्षक नहीं लगता। अतः जीवन-मंदिर को सद्गुणों से

सजाओ, दुर्गुणों से नहीं। सद्गुणों से जीवन को सजाने के लिए चाहिए गुणानुराग और गुणान्वेषण की प्रवृत्ति।

जो समस्त गुणों के भंडार हैं, जहाँ दोषों के लिए कोई स्थान ही नहीं होता वे देवता है, परमात्मा है। जिसमें सारे अवगुण ही है उसे शैतान कहते हैं। जिस में गुण भी है और अवगुण भी है वह मनुष्य है चूँकि मनुष्य में दोनों तत्व है अतः अपनी दृष्टि को गुणग्राही बनाना जरुरी है।

तीर्थंकर भगवान महावीर ने अपनी अंतिम वाणी उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है- **कंखे गुणे जाव सरीर भेऊ** अर्थात् जब तक यह जीवन है तब तक गुणों को देखो, गुणों को ही चाहो और गुणों को ही ग्रहण करना सीखो। जिसकी दृष्टि गुणग्राही होती है उसे कभी दोष दिखाई नहीं देते। इस बात के लिए इतिहास साक्षी है कि चौदह वर्ष के वनवास को पूर्ण कर जब मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम अयोध्या लौटे तो सबसे पहले माँ कैकेयी से मिलने दौड़े थे। माता के चरणों का स्पर्श करके वे अहोभाव से कहने लगे- "माँ! यदि तूने मुझे वन मे नहीं भेजा होता तो पिताजी के प्रेम की प्रगाढता का परिचय नहीं मिलता, भरत की महिमा अनजानी रह जाती; हनुमान की भक्ति एव सीता के पतिव्रात्य की परीक्षा भी कैसे हो सकती थी, दुश्मनो की शक्ति को परास्त करने का मौका भी नहीं मिलता। माँ! मैं तेरा जन्म-जन्म का ऋणी हूँ।" जिस कैकेयी माता को सभी घृणा की निगाहो से देखते है किन्तु गुणग्राही श्रीराम ने अपने विरोधी की भी योग्यता का सत्कार-सम्मान किया था।

इस संसार में चार प्रकार के लोग है। पहले प्रकार के लोग वे है जो अपने गुण देखते है पर दूसरों के गुण नहीं देखते। दूसरे प्रकार के लोग ऐसे हैं जो अपने भी गुण देखते है ओर दूसरों के भी गुण देखते है। तीसरे प्रकार के लोग ऐसे हैं जो दूसरों के गुण देखते हैं पर अपने गुण नहीं देखते। चौथे प्रकार के लोग वे हैं जो न अपने गुण देखते हैं और ना ही दूसरों के गुण देखते हैं। इन चार प्रकार के लोगों में अपना स्थान कहाँ है उसे प्रमाणिकता से पहचानकर गुणग्राही बनने में ही सार है। जिसकी जैसी तैयारी होगी वह वैसा ही ग्रहण करेगा। यदि ग्रहण करने का तरीका आता हो तो जहर भी अमृत बन जा!ता है।

गुण और गुणग्राही का आपस में एक घनिष्ठ संबंध होता है। हजार कोस दूरी पर रहा हुआ गुणग्राही गुणों को अपने प्रति वैसे ही खींच लेता है जैसे हजार शिकायतो को सहकर भी बुलबुल गुलाब को अपनी ओर खींच लेता है।

कहते हैं एक बार बादशाह सुलेमान के दरबार मे अचानक अनेक पक्षियो का आगमन हुआ। यह देखकर बादशाह आश्चर्यचकित हो गये। सारे पक्षी आज बुलबुल के आलाप से खीझकर दरबार में शिकायत करने के लिए पहुँचे थे। पक्षियों का राजा मोर है उसने आगे आकर विनम्र स्वर मे कहा- "जहाँपनाह ! हम सारे पक्षी बुलबुल के मधुर तराने के कारण बहुत परेशान है। उसकी सुरीली तान से कोई भी पक्षी अपने घोंसले में सुख की नीद नहीं ले पाता।"

यह सुनकर सुलेमान ने बुलबुल को बुलाया और उससे

जवाब-तलब किया। अत में बुलबुल ने कहा- "जहाँपनाह! मेरी चहक तो गुलाब के प्रति मेरे हृदय की मूक प्रीति के कारण स्वतः ही स्फूर्त हो जाती है इसमें मैं क्या करुँ? उसका अनुपम सौंदर्य मेरे हृदय-वीणा के तारों को स्वयं झंकृत कर देता है इसमें मेरा क्या कसूर है?" वास्तव में जहाँ गुण होंगे वहाँ गुणग्राही की दृष्टि स्वतः ही पहुँच जायेगी। उन गुणों तक पहुँचने के लिए अनेक विघ्न-बाधाओं का मुकाबला करने में भी गुणग्राही पीछे नहीं रहता। उर्दू के प्रसिद्ध शायर अकबर ने भी इन्हीं भावों को लिखा है-

हुजूमे बुलबुल हुआ चमन में
किया जो गुल ने जमाल पैदा ।
कमी नहीं कद्रदां की 'अकबर'
करे तो कोई कमाल पैदा ।।

अर्थात् गुलाब के सौंदर्य को देखकर चमन में बुलबुलों की भीड एकत्रित हो गई है। सच है, कद्रदां की कहीं कमी नही है, कोई कुछ कमाल तो पैदा करके दिखाएँ।

सत कबीर ने एक दोहे में कहा है-

जब गुण को गाहक मिलै तब गुण लाख बिकाय ।
जब गुण को गाहक नहीं कौड़ी बदले जाय ।।

जहॉ गुणज्ञ लोग होते हैं वहाँ गुणवान् मनुष्य का बहुत आदर-सत्कार होता है परतु जहॉ गुणज्ञ लोग नहीं होते वहाँ गुणवान मनुष्य कौडी तुल्य हो जाता है। यह जीवन गुणों के मोती और अवगुणो के ककरों से भरा हुआ है। खेत में

फूल भी आते हैं और शूल भी; सागर रत्नाकर भी है और लवणाकर भी; पृथ्वी के गर्भ में बहुमूल्य स्वर्ण भी है और कोयले भी है; आकाश में चमकते नक्षत्र भी है और काले कजराले बादल भी है; संसार में साधु भी है और शैतान भी है।

सब कुछ मनुष्य की क्षमता, दृष्टि और प्यास पर आधारित है। यह जीवन एक अनमोल अवसर है व्यर्थ को पहचानने का और सार्थक को जीने का। अपनी दृष्टि को अवगुणों और दोषों से हटाकर गुणों एवं अच्छाइयों पर स्थिर कर दें। जिस प्रकार इस विश्व में एक भी ऐसा मकान नहीं हो सकता जहाँ दरवाजा ना हों उसी प्रकार यहाँ कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है जिसमें गुण ना हो सिर्फ देखनेवाली नजर की कमी हो सकती है। एक शायरी में भी लिखा गया है-

नजर का जाबिया बदलो ।
तो बुराई में भी अच्छाई मिलेगी ।।

25 सुख से जीओ

जीवन के लम्हों में कोई फर्क नहीं
कौन कितना जिएँ
फर्क सिर्फ इतना सा है
कौन कैसे जिएँ...

प्रवचनांश

- मानव जीवन तरह-तरह की विशेषताओं का और विषमताओं का मेला है।
- जन्म-जन्म से मनुष्य अंधकार में प्रकाश की खोज कर रहा है। अफसोस यह है कि उसकी यह खोज दरवाजे और खिडकियो को बंद करके हो रही है।
- मनुष्य दु:खी इसलिये है क्योंकि दु:ख में उसका गहरा रस है। यदि सुख से जीना हो तो उसे दु:ख के प्रति जो उसका आदर और रस है उसे जड-मूल से हटाना होगा।
- सुख से जीने का राज यह है कि जो दु:ख मिला है वह अपनी अयोग्यता के मुकाबले थोडा है और जो सुख मिला है वह अपनी योग्यता के मुकाबले अधिक है।

25 सुख से जीओ

मानव-जीवन तरह-तरह की विशेषताओं का और विषमताओं का मेला है। जिंदगी अक्सर प्रश्नों और परेशानियों के सिकंजो में जकड़ी हुई सुलगते-झुलसते रेगिस्तान सी हो जाती है। परेशानी, उलझन, सवाल, दुविधा, उदासी, समस्या ये सब अब शब्दकोष में नहीं वरन् जिंदगी के साथ घुलमिल गये हैं। दुनिया की राह पर फूल से भी ज्यादा काँटें बिखरे पड़े हैं फिर ताज्जुबी तो इस बात की है कि आदमी के दिल को काँटों से भी ज्यादा फूल चुभते हैं। फूलों के घाव बड़े गहरे होते हैं जो जल्दी नहीं भरते। सुख की खोज में खुद ही खोया हुआ आदमी कभी तो बेवजह मुस्करा लेता है और कभी उदासी को भीतर में संजो लेता है। परिणामस्वरुप वह थकान, टूटन और घुटन महसूस करता है।

बुद्ध पुरुषों ने संसार के स्वरुप का चिंतन करते हुए बताया कि मनुष्य जिस जगत में जीता है वह द्वन्द्वात्मक है। यहाँ एक का अस्तित्व दूसरे से नहीं जुडता। हाँलाकि हर अस्तित्व अपने प्रतिपक्ष को लिए हुए है। जैसे फूल काँटों से, दिन रात से, सूर्योदय सूर्यास्त से और प्रकाश अंधकार से जुडा हुआ है। जन्म-जन्म से मनुष्य अंधकार में प्रकाश की खोज कर रहा है। अफसोस यह है कि उसकी यह खोज दरवाजे और खिडकियों को बंद करके हो रही है। अतः मनुष्य का प्रयास जीवन में दुःख की मात्रा को बढ़ा रहा है। सुबह से शाम तक का सारा श्रम दुःख को जन्म दे रहा है। जिसने भी दुःख को चाहा उसके हाथ अंततः दुःख ही

आया। यहाँ ऐसा कौन है जो सुख नहीं चाहता हो ? इसलिए भारत के ऋषि-मुनियों ने मंगल-भावना व्यक्त करते हुए कहा-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत् ।।

अर्थात् विश्व के सभी प्राणी सुखी हो, सभी निरोगी बनें, सबका कल्याण हो तथा कोई कभी भी दुःखी न हो। इतनी सद्भावना और मंगल-कामना प्रतिदिन करने के पश्चात् सुख मिलता कहाँ है ? हमारा सारा जीवन तो दुःख में जड़े जमाये बैठा है।

जीवन में यदि दुःख है, कड़वाहट है तो यह सिद्ध होता है कि बीज में जरुर कोई कड़वापन रहा होगा; हम सुखी होना चाहते हैं किन्तु बीज हमेशा दुःख और कड़वाहट के बोते हैं। इस मानवीय वृत्ति को स्पष्ट करते हुए संस्कृत के एक श्लोक में कहा है-

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति मानवाः ।
पापस्य फलं नेच्छन्ति पापं कुर्वन्ति सादराः ।।

अर्थात् मनुष्य पुण्य के फल की इच्छा तो करता है किन्तु बीज पापो के बोता है। वह पाप के फल तो नहीं चाहता परतु पाप के कार्य आदरपूर्वक करता है।

मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि मनुष्य दुःखी इसलिए है क्योंकि दुःख में उसका गहरा रस है। आज मनुष्य की जीवन-शैली ऐसी हो गई है कि उसे दुःख प्रिय लगता है। एक बच्चे को दुःख में रस पैदा करने की सघन वृत्ति बचपन से तैयार हो जाती है। जैसे एक बच्चा जब बीमार होता

है तो माँ निरंतर उसके आस-पास रहती है और पिता का भी उस पर पूरा ध्यान रहता है। ऐसी स्थिति में कोई उस बच्चे के पैर दबाता है, कोई उसका माथा दबाता है, कोई उसे बड़े प्रेम से भोजन खिलाता है तो कोई उसे डाक्टर के पास ले जाता है।

तात्पर्य यह है कि उस बीमार बच्चे को हर ओर से संवेदना, प्रेम और सहानुभूति मिलती है। वह सोचता है जब मैं स्वस्थ था तब मुझे सब ओर से डाँट-फटकार मिलती थी और ढ़ेर सारी शिक्षाएँ मिलती थी। अतः उसके अचेतन मन में यह बात गहरी जमती चली जाती है कि यदि मैं स्वस्थ रहूँ तो माँ का प्रेम, पिता का ध्यान, बुजुर्गों का लाड़-प्यार, मित्रों की संवेदनाएँ और रिश्तेदारों की सहानुभूति कम हो जाती है। फलतः उस बच्चे को रुग्ण रहने में एक मजा आता है।

ऐसी मानसिकता अस्वस्थ चित्त की देन है और इस प्रकार की मनोदशा के कारण प्रत्येक मनुष्य दुःख में रस पैदा कर लेता है। दुःखी व्यक्ति के प्रति लोग सद्भाव व्यक्त करते हैं, जैसे किसी के घर में आग लग जाय या चोरी हो जाय तो सारे आसपास वाले, मित्र और रिश्तेदार सांत्वना और सहानुभूति जतलाने आ जाते हैं। इससे विपरीत यदि कोई व्यक्ति सुखी है, उसके पास सुंदर बंगला और सुरम्य बाग-बगीचा है तो सभी लोग उससे ईष्या करते हैं। आज जीवन की प्रक्रिया ऐसी गलत हो गई कि खुद ही केले के छिलके फैलाते है और जब फिसलते है तो पीड़ित होते हैं। किसी शायर की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है-

हम उस जिंदगी पर मरते है ।
जो कभी चैन से बसर न हुई ।।

यदि व्यक्ति सुख से जीना चाहता है तो उसे दुःख के प्रति जो गहरा रस है, आदर है उसे जड़-मूल से हटाना होगा। सुख में रस पैदा करना होगा और सुख को आदर देना प्रारंभ करना होगा। क्योंकि यह कुदरत का नियम है कि जिस चीज को आदर दो वही हमें मिलेगा और जिसकी उपेक्षा करोगे वह हमसे दूर रहेगा। जीवन को यदि Positively देखना प्रारंभ कर दे तो हम सुख का आदर कर सकते हैं।

तीन वृद्ध व्यक्ति शाम के समय बगीचे में टहल रहे थे। तीनों ही एक-दूसरे से परिचय करने लगे। तीनों के चेहरे पर अजीब उदासी थी। एक बूढ़े ने दूसरे से उसकी उदासी का कारण पूछा तो वह कुछ सुन पाया और कुछ नही। तब पहलेवाले बूढे ने पुनः कुछ जोर से पूछा तो उसकी उदासी चिता में बदल गई। लम्बी साँस लेते हुए उसने कहा- भाई! मुझे कम सुनाई देता है जिससे कहनेवाला कहता कुछ है और मै कुछ और ही समझ लेता हूँ।

उस वृद्ध श्रोता ने कहा- "दोस्त ! यह तो बड़ी सुखद बात है। इस तरह से तो तुम सहज मे ही बुरी बातों को सुनने व सुनाने से बच सकते हो।"

वह बोला- "नही मित्र ! यह तो मेरे लिये बड़े दुःख का कारण है। तुम्हे क्या पता कि मुझे अपनी जिदगी मे इस कमजोरी से कितनी झिडकियॉ और जली-कटी बाते सुनने को मिलती है। कोई मांगता कुछ है और मैं देता कुछ और

हूँ। यह दुःख मेरे जीवन को नीरस बना रहा है।"

दूसरे वृद्ध ने पहले वृद्ध से पूछा- "भाई तू क्यों भीतर से बेचैन दिखाई दे रहा है?"

वह बोला- "मेरे आँखों की ज्योति मंद हो गई है।"

यह सुनकर वह तुरंत बोला- मित्र तुम्हारा यह दुःख तो बड़ी उपलब्धि का कारण है। सुना है जिसके आँखों की बाह्य ज्योति कम होती है उसके अंतर के नेत्र खुल जाते हैं जिससे वह जगत के प्रपंच छोड़कर ब्रह्मा में लीन हो सकता है।"

यह सुनकर उसने कहा- "नहीं, नहीं जीवन में आँखों की ज्योति की कमी सबसे बड़ी कमी है। इस कमजोरी के कारण मेरा उपहास होता है और मेरे पर अनेक फब्तियाँ कसी जाती है जो मेरे दिल को दहला देती है। यही कारण है कि मैं उदास रहता हूँ।"

तीसरे वृद्ध ने दोनो की जीवन-व्यथा सुनकर कहा- "भैया! मेरी श्रवण और दर्शन की शक्ति तो प्रबल है परंतु स्मरण शक्ति बड़ी कमजोर है। मैं भूल्क्कड हूँ। अत. मुझे घरवालों की डाँट-फटकार सहनी पडती है और पग-पग पर अपमानित भी होना पडता है।"

दोनो ने उसे सलाह देते हुए कहा- "अरे मित्र ! इस दुःख को तो आसानी से दूर किया जा सकता है। इसके लिए तुम अपनी जेब मे एक डायरी रखो और हर आदेश-निर्देश को नोट करते रहो।"

तब वह बोला- "नहीं, इस डायरी को मै जब साथ रखना

ही भूल जाता हूँ या डायरी को मैं जहाँ-तहाँ रखकर भूल जाता हूँ तो मुझे लज्जित होना पड़ता है।"

प्रत्येक व्यक्ति की जीवन-कहानी ठीक ऐसी ही है। यहाँ हर व्यक्ति अपने दुःख की गाथा सभी के सामने दोहराता रहता है और अंततः उस दुःख को आदर देना शुरु कर देता है।

सुख से जीने का राज यह है कि जो दुःख मिला है वह अपनी अयोग्यता के मुकाबले थोड़ा है और जो सुख मिला है वह अपनी योग्यता के मुकाबले अधिक है। इसके लिये प्रतिदिन ऐसा चिंतन करना चाहिए-

हे परमात्मा ! जिस दुःख को बदला नहीं जा सकता
उसका स्वीकार करने की शक्ति मुझे देना।
जिस दुःख को बदला जा सकता हो
उसको बदलने की क्षमता मुझे देना।
तथा इन दोनों में जो अंतर है
उसको समझने की पात्रता मुझे देना।